# इन्द्रजाल

रघुनाथसिंह

नवीन प्रकाशन मंदिर,
मानमंदिर, काशी ।

प्रकाशक—
वासुदेव प्रसाद गुप्त,
नवीन प्रकाशन मंदिर, मानमंदिर, काशी।

| प्रथम संस्करण | १९४१ ई० | मूल्य— |
| --- | --- | --- |

मुद्रक—
बजरंगबली 'विशारद',
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी।

पदाम्बुजेषु—

श्री ठा० जगन्नाथसिंहानाम्

# भूमिका

लेखक—प्रो० डा० भीखनलाल आत्रेय, एम० ए, डी० लिट्,
अध्यापक, दर्शन और मनोविज्ञान, हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी।

ठाकुर रघुनाथसिंह के 'इन्द्रजाल' नामक उपन्यास की भूमिका लिखने में मुझे बहुत हर्ष होता है, विशेषतः इस कारण से कि इसका मुझसे कुछ आत्मीय सा सम्बन्ध है, जिसका संकेत उन्होंने अपनी प्रस्तावना में किया है। यह उपन्यास श्री योगवासिष्ठ महारामायण के इन्द्रजाल नामक उपाख्यान के आधार पर लिखा गया है और, जैसा कि ठाकुर साहब ने अपनी प्रस्तावना में कहा है, इसको लिखने की प्रेरणा उनके मन में मेरे हिन्दी ग्रन्थ **योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त** में वर्णित 'इन्द्रजालोपाख्यान' को पढ़कर हुई थी।

संस्कृत-साहित्य में योगवासिष्ठ एक महान्, अद्भुत और अनुपम ग्रन्थ है। साहित्य और दर्शन का ऐसा उत्तम संयोग मुझे पृथ्वीमण्डल के और किसी ग्रन्थ में दिखाई नहीं देता। यदि योगवासिष्ठ का आत्मा उच्च से उच्च कोटि का दर्शन है तो उसका कलेवर सर्वगुण सम्पन्न काव्य है। यह इतना सुन्दर और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है कि यदि मुझे किसी कारणवश संसार के समस्त साहित्य में से केवल एक ही ग्रन्थ को अपना जीवन-साथी चुनने को बाध्य होना पड़े तो मैं सहर्ष योगवासिष्ठ

को ही चुनूँगा। मुझे इस ग्रन्थ के विशेषतः अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और इसके सम्बन्ध में कई अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत की छोटी-बड़ी पुस्तकें लिखने का श्रेय भी मिला है।

योगवासिष्ठ में ऊँचे से ऊँचे दार्शनिक सिद्धान्तों को दृष्टान्तों और उपाख्यानों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया है। इस यत्न में योगवासिष्ठ के लेखक को बहुत बड़ी सफलता प्राप्त हुई है। इसमें सहस्रों उत्तम से उत्तम और मौलिक दृष्टान्त हैं जिनके द्वारा कठिन से कठिन और गूढ़ से गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्त सहज में ही मन में प्रवेश कर जाते हैं। उपाख्यानों की संख्या भी ५५ से कम नहीं है। प्रत्येक उपाख्यान इतना मनोहर और सांकेतिक है कि उसको पढ़कर योगवासिष्ठ के दृष्टिकोण को समझने में कोई कठिनाई नहीं रह जाती। प्रत्येक उपाख्यान के आधार पर एक सुन्दर कहानी, उपन्यास, नाटक, अथवा सिनेमा-कथानक की रचना की जा सकती है। मेरी बहुत दिनों से यह अभिलाषा है कि इनमें से कुछ उपाख्यानों को चुनकर उनके आधार पर सिनेमा-कथानक लिखकर उन्हें सिनेमा द्वारा जनता के सामने प्रकाशित करा सकूँ। समयाभाव के कारण मैं अभी तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सका, पर मुझे पूर्ण आशा है कि भविष्य मे योगवासिष्ठ के कई उपाख्यान—विशेषतः लीला, चुडालमा, गाधी और इन्द्रजाल नामक उपाख्यान अवश्य ही सिनेमा के रजत-पट पर जनसाधारण के देखने में आवेंगे।

मुझे प्रस्तुत उपन्यास को अपने हाथों में देखकर इस का

अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि यह पुस्तक मेरी उपरोक्त आकांक्षा की पूर्ति की मूर्ति का एक अंश है। मुझे आशा है कि इस पुस्तक के प्रतिभाशाली लेखक योगवासिष्ठ के अन्य उपाख्यानों के आधार पर भी इसी प्रकार उपन्यास लिखकर योगवासिष्ठ के सिद्धान्तों का जनता में प्रचार करेंगे। जनसाधारण में दार्शनिक और नैतिक सिद्धांतों के प्रचार करने के कहानी, उपन्यास, नाटक और सिनेमा ही सर्वश्रेष्ठ साधन हैं।

यहाँ पर योगवासिष्ठ के दार्शनिक सिद्धान्तों के उल्लेख करने का अवसर नहीं है। उनको समग्रतः और सरलतया जानने के लिये 'योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त' आदि पुस्तकें पढ़नी पड़ेंगी। यहाँ पर केवल उन सिद्धान्तों का ही संक्षेपतः उल्लेख करना उचित होगा जिनको समझाने के लिये योगवासिष्ठ में वसिष्ठजी ने रामचन्द्रजी को इन्द्रजाल का उपाख्यान सुनाया था। वे सिद्धांत ये हैं—"सारा जगत् मन के भीतर है। मन इसको एक निमेष में उत्पन्न कर लेता है और एक निमेष में लीन कर लेता है। सारा दृश्य संसार स्वप्न के सदृश है। क्षणभर के स्वप्न में वे सब घटनाएँ घटित हो जाती हैं जो बाह्य जगत् में, जो एक दूसरा स्वप्न है, युगों और कल्पों में होती हैं। जो कुछ बाह्य जगत् में होता है वही क्षणभर में मन के अन्दर प्रतीत हो सकता है।" **योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त,** पृष्ठ ६० )। प्रस्तुत उपाख्यान में राजा लवण को दो घड़ी की कृत्रिम मूर्च्छा ( Hypnotic Trance ) में ६० वर्ष

तक होनेवाली वास्तविक घटनाओं का इसी प्रकार अनुभव हुआ, जैसा कि सब लोगों को स्वप्न के थोड़े से क्षणों में वर्षों की घटनाओं का हो जाया करता है।

प्रस्तुत उपन्यास के गुण-दोष के सम्बन्ध में कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं तो भी एक-दो बात अवश्य कहना चाहता हूँ। लेखक ने इसको दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक बनाने तथा काव्यमयी भाषा में लिखने का भरसक प्रयत्न किया है और इस प्रयत्न में उनको बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई है। भाषा जन-साधारण के दृष्टिकोण से कुछ अधिक कड़ी हो गई है, संस्कृत के कठिन शब्दों का बाहुल्य है—इस कठिनाई को दूर करने के लिये प्रकाशक ने पुस्तक के अन्त में कठिन शब्दों की एक कुंजी दे दी है। कहानी वीभत्स होते हुए भी मनोरंजक है। यह कहानी और भी मनोरंजक बनाई जा सकती थी यदि लेखक महोदय तीसरे और चौथे पाठों के बीच में कम से कम एक पाठ में योग वासिष्ठ में निर्दिष्ट सात रात तक मनाए गए चाण्डाल-कन्या के विवाहोत्सव ("सप्तरात्र्योत्सव") का मनोहर और जीता-जागता वर्णन कर देते। मुझे आशा है कि पुस्तक के दूसरे संस्करण मे यह कमी पूरी हो जायगी।

लेखक और प्रकाशक दोनों को ही मैं इसलिए धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे इस भूमिका के लिखने का अवसर दिया।

काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय,
२ मार्च, १९४१ ई०

भी० ला० आत्रेय

# अपनी बात

क्षर-अक्षर, पुरुष-प्रकृति, चेतन-अचेतन, आस्तिक-नास्तिक, द्वैत-अद्वैत, ज्ञान-अज्ञान, योग-भोग, तर्क-भक्ति आदि के चक्र में पड़ा जब मैंने अपनी दुनिया देखी तो मेरे मन ने मुसकराकर कहा कि यह सब किसी ऐन्द्रजालिक का इन्द्रजाल है। सच समझिए, मेरा मन घबड़ा उठा। इस घबड़ाहट में कुछ सूझ-बूझ न पड़ा कि कहाँ जाऊँ, क्या करूँ? किसकी शरण लूँ और किसका दर्शन करूँ? ओह! ठहरिए। दर्शन! किसका दर्शन? भगवान् का, किसी देवी-देवता का या अपने जैसे चलते-फिरते देहधारी जीवों का? बुद्धि ने रोककर कहा कि ऐ मूर्ख, यदि मनुष्यों को भगवान् का प्रत्यक्षीकरण होता तो उसके अस्तित्व में लोकायत अविश्वास क्यों करते? इतने दर्शनों, इतने मत-मतान्तरों, इतने धर्मों, इतने सम्प्रदायों की सृष्टि क्यों होती? भगवान् प्रत्यक्ष होकर कह देता कि अमुक मत ठीक है, अमुक धर्म हमारा धर्म है और अमुक स्थान हमारा मन्दिर है। फिर तो दुनिया को पागलों की तरह उसे खोजने के लिए भटकना न पड़ता और न हमें उनकी ही आवश्यकता पड़ती जो उसके हिमायती कहाकर उसके पास पहुँचाने और उसके दर्शन कराने के ठेकेदार बने बैठे हैं।

बहुधा लोग कहते हैं कि शरीर अस्थिर होने पर, बुद्धि विकृत होने पर और मन चंचल होने पर शान्त रहना श्रेयस्कर हुआ

करता है। इस शान्ति के आवाहन में चाहे वास्तविक शांति की अनुभूति होती हो या नहीं; परन्तु इतना अवश्य है कि मन थोड़ा स्थिर हो जाता है और विश्राम पाकर उसमें नवीन स्फूर्ति आ जाती है। फिर क्या था? चर्वाक्, बृहस्पति, बुद्ध, महावीर, कणाद, गौतम, कपिल, पातञ्जलि, जैमिन, बादरायण आदि ऋषियों को मैंने करबद्ध नमस्कार कर कहा—'हे देवादिदेवगण, अनुग्रह कर मुझे अपने लोकायत, माध्यमिक, योगाचार. सौतान्त्रिक, वैभाषिक, अर्हत, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, वेदान्तादि का दर्शन न कराएं तो अच्छा है। इतना कहकर जब मैंने नेत्र मूंद लिया तो दुनिया मेरे लिए सो गई और मैं शून्यवत् हो गया।

ब्राह्ममुहूर्त में मेरी निद्रा खुली। अपने से नहीं; किन्तु मेरे घर के सामने स्थित मसिजद में रहनेवाले मुल्ला साहब की अजान की आवाज से। 'ला इलाह-इलिल्लाह मुहम्मद-रसूलिल्लाह' की कई बार दाएं, बाएं और सामने मुख करके पुकार लगाई थी। उसके द्वारा जहाँ तक आवाज पहुँचती थी. वहाँ तक के खुदा पर ईमान रखनेवाले मुसलमानों को उठकर मसिजद में आने और अल्लाह के सामने सिजदा करने का आवाहन किया गया था। रात-भर के विश्राम से और उषाकाल की सुहावनी वायु तथा प्रकृति की चैतन्यता से मेरी बुद्धि मे स्वाभाविक स्फूर्ति तथा जीवन आ गया था। मैंने विचार किया कि खुदा के बन्दों मे भेद किसने किया? क्या मैं मसजिद मे जाकर मुसलमानों की तरह

सिजदा नहीं कर सकता ? क्या भगवान् का रसूल सिर्फ मुहम्मद ही है ? हो। फिर दूसरे धर्मों के पैगम्बर और रसूल क्या हैं। यदि यह बात ठीक है तो हमारे विचारे अवतारों की क्या हालत होगी ? मैं अपने तर्क-वितर्क में था ही कि मेरे घर से दो फरलांग दूर पर के गिरजे का घण्टा घनघना उठा। टहलने का समय था। मैं बाहर निकलकर टहलने चल पड़ा। सिगरा का गिरजाघर शहर से बाहर मैदान में था। उसी ओर मैं प्रायः टहलने जाया करता था। वहाँ जाकर मैंने देखा कि ईसा के अनुयायी जिनकी मुक्ति का मार्ग खोलने का संभवतः ईसा ने विश्वास दिला रखा है, सौम्यरूप से पंक्तिबद्ध गिरजे में प्रवेश कर रहे हैं। उनका वह शान्त जलूस देखकर मुझे सूर्योदय समय के उस जलूस का स्मरण हो आया जो जेलखाने में फाँसी के कैदी को फाँसी के तख्ते पर ले जाते समय जेल-अधिकारियों द्वारा बनाया जाता है। मैं गिरजे में जा सकता था; किन्तु फाँसी के जलूस की याद आ जाने पर दुर्बल मन काँप उठा। स्थिरता जाती रही। शीघ्रता से आगे बढ़ गया। अब, घनघनाता घण्टा रुक चुका था। शायद गिरजे मे लोग प्रार्थना करने लग गए थे।

मैं कुछ ही आगे बढ़ा था कि सिगरा के पास एक ऊँचे टीले पर के मन्दिर में प्रातः-आरती के उपलक्ष मे घण्टे, घड़ियाल, धौंसे, शंख, चंग झाँझ आदि एक साथ बजने लगे मानों शिवजी की बारात हिमांचल के द्वार पर लगने जा रही हो। मैं न जाने क्यों मुसकरा उठा। इतने में मेरी बगल से किसी लक्ष्मीपात्र

की बिलकुल नई मोटर धूल से सड़क को अन्धकारमय करती वायु-वेग से निकल गई। मैं धूल से नहा उठा। चुपचाप गर्द साफ होने की प्रतीक्षा में खड़ा रहा। जब कुछ दिखाई देने लगा तो सड़क के किनारे पैर फैलाए बैठे एक भिखमगे को मैंने देखा। वह अपने पैर के बड़े घावपर जमे कीट पर अपने मलिन हाथों को हिला रहा था जिससे धूल या मक्खी उसपर न आ सके। पास में ही खड़े दो नंगे लड़के मुट्ठियों से आँखें मींज रहे थे। एक बनिया बैल की लदनी के साथ रास्ता साफ होने की प्रतीक्षा कर रहा था और धोबिन अपने धोए कपड़ों की तह परहाथ थपथपाती हुई मोटरवाले पर गालियों की वर्षा कर रही थी। जब मुझे मोटर में आराम से बैठे मोटर-मालिक का ध्यान आया, जिसकी एक झलक मुझे मिल चुकी थी, तो मैंने सोचा कि किस प्रकार गर्वपूर्वक वह दूसरों की ओर अवहेलना की दृष्टि से देखता चला जा रहा था, मानों वही संसार में मनुष्य है और सड़क पर चलनेवाले दूसरे व्यक्ति पशु हैं।

अस्तु, मैं सड़क से हटकर एक आम्र-वृक्ष के नीचे टहलने लगा। टहलते-टहलते मुझे संसार का पुनः ध्यान आया। इस बार मैंने सोचा कि हम सब मनुष्य हैं। परन्तु एक ही भगवान् की भावना सबमें भिन्न-भिन्न प्रकार की क्यों उत्पन्न होती है? सबका मन एक ही बात को क्यों नहीं सोचता है? एक ही बात क्यों नहीं ग्राह्य की जाती? सब लोग डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग-अलग क्यों पकाया करते हैं?

मैं संसार की समस्याओं एवं उसके रूप के परिज्ञान के चक्कर में पड़कर अपना अधिक समय व्यर्थ नहीं गँवाना चाहता था। क्योंकि मेरी धारणा हो चुकी थी कि वह समझने की वस्तु नहीं है। यदि ऐसा होता तो अब तक लोग समझकर उसकी समस्याओं को सुलझा चुके होते, जिनके कारण नित्य लोगों की नाकों में दम रहता है। भगवान् ने केवल हमें संसार की समस्याओं को सुलझाने के लिए ही उत्पन्न किया है। अस्तु, मैं अपने इस उधेड़बुन में पड़ा ही हुआ था कि किसी युवक के कंठ से रामायण की चौपाई लय से निकलती हुई सुनाई दी। ठीक इसी स्थान पर कुछ दिनों पूर्व मेरे मामा को गोली लगी थी। यहाँ एक ओर ईसाइयों का कब्रिस्तान और दूसरी ओर शिव-मन्दिर था। बीच में सड़क पर मैं अचानक रुका खड़ा था। मैंने ध्यानपूर्वक सुना कि वह प्रसंग श्रीरामचन्द्र को वसिष्ठ को वेदाध्ययन के लिए सौंपने का था। मैं आगे न बढ़कर पीछे घूम पड़ा। मैं उस समय अत्यंत प्रसन्न था।

मैं बाल्यावस्था में अपनी बड़ी मामी के पास जब रात मे सोता था तो वह नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में छपे 'योगवासिष्ठ' का पाठ किया करती थी। उस समय उसकी कहानियाँ मुझे बहुत प्रिय लगती थीं और कहानियों के अतिरिक्त उस समय उसमें मेरे लिए महत्व की कोई बात न थी। जब मेरे घर के पास ही के रहनेवाले वृद्ध ब्राह्मण मथुरा मिश्र उस पुस्तक को ले गए तो मैंने समझा कि चलो घर से एक मोटी पुस्तक हटी।

किन्तु समय बीतता है, समय के साथ मन बदलता है और

मन के साथ ही रुचि बदलती है। सन् १६३० के आन्दोलन में जब मुझे छः मास की सजा मिली और बीस ही दिनों बाद मैं मथुरा-जेल बदल दिया गया तो अपनी उस इक्कीस वर्ष की अवस्था में मैंने पहले-पहल दुनिया का रूप देखा। मैं खतरनाक कैदी करार देकर यहाँ से बदला गया था और मथुरा में चार मास तक फाँसीघर की कोठरी में रखा गया। उस समय अपनी उस अल्पावस्था में मैंने देखा—मृत्यु की प्रत्यक्ष छाया, मनुष्य-जीवन का मूल्य और उसके साथ खेलनेवालों का स्वरूप। किन्तु परिस्थिति से मैं डरा नहीं; बल्कि उसमें भी मुझे आनन्द ही आया और आज मैं जो कुछ हूँ, वह उसी फाँसीघर के जीवन का आशीर्वादस्वरूप हूँ।

उस फाँसीघर में मैं गीता, रामायण, कुरान और बाइबिल को कई बार पढ़ गया। उस समय विशेष समझ तो न सका; किन्तु सिद्धान्तों और तर्कों की आभा-सी मस्तिष्क पर छा गई और स्वयं कुछ विचार तथा मनन करने की क्षमता उत्पन्न होने लगी। जब अपनी सजा का एक मास बाकी रह गया तो अन्य राजनीतिक कैदियों के साथ उसी जेल के ६ नम्बर में रखा गया। वहाँ मुझे ठीक दस वर्ष के पश्चात् योगवासिष्ठ का बँगला अनुवाद देखने को मिला। मैं बँगला जानता था। बहुत पढ़ गया। मुझे उसकी शब्दावली अब तक याद है कि किस प्रकार भगवान् श्रीरामचन्द्र को वैराग्य उत्पन्न हुआ और वसिष्ठ ने उसका समाधान किया था। योगवासिष्ठ की यह अत्यन्त प्राचीन बँगला-प्रति थी। जेल से बाहर निकलने पर उस अनुवाद को

बहुत खोजा, परन्तु मिल न सका।

दस वर्ष और वीत गए। एक दिन जब बाहर से घूमकर लौट रहा था तो मुझे भगवान् रामचन्द्र के विषाद की बात पुनः स्मरण हो आई। घर पर आकर पुरानी गीता का पता लगाया, जिसका पाठ बीस वर्ष पहले मामी किया करती थीं। किन्तु वह न मिली। अकस्मात् दो दिन पश्चात् मैं अपने मित्र बाबू ज्योतीभूषण गुप्त के पास अजमतगढ़-पैलेस पहुँचा। वहाँ मुझे डाक्टर भीखनलाल आत्रेय कृत 'योगवासिष्ठ और उसके सिद्धान्त' मिला। उसे देखते ही योगवासिष्ठ के सम्बन्ध की सारी बातें याद आ गईं। मैं उसे अपने मित्र से माँगकर रास्ते-भर पढ़ता हुआ अपने आफिस शान्ति-निकेतन, दशाश्वमेधघाट पर पहुँचा।

उस योगवासिष्ठ के सिद्धान्त के आरम्भ में ही बहुत से उपाख्यान दिए हैं। उनमें 'इन्द्रजालोपाख्यान' नाम का एक अत्यन्त रोचक उपाख्यान है। मनुष्य की मानसिक भावनाओं को लेकर वह उपाख्यान लिखा गया है। मुझे वह पसन्द आ गया, जो प्रस्तुत उपन्यास का आधारभूत है।

प्रस्तुत उपन्यास आरम्भ करने के पहले मूल योगवासिष्ठ देखना आवश्यक था। बड़े प्रयत्न से संस्कृत की मूल पुस्तक बँगला में अपने मित्र श्री तारापद भट्टाचार्य की सहायता से उपलब्ध हो सकी। उन्हीं की कृपा से मथुरा-जेल में जो बँगला-अनुवाद मुझे देखने को मिला था, वह भी मिल गया। बीस वर्ष पश्चात् मथुरा मिश्र के यहाँ भी मैं अपनी मामी की पुस्तक

खोजता हुआ पहुँचा और वह हिन्दी-अनुवाद भी मिल गया।

अस्तु, मन के विश्लेषण के साथ उसके विकारों का स्पष्टीकरण सरस भाषा में जितना सुन्दर योगवासिष्ठ में किया गया है, संभवतः इतना सुन्दर संसार के किसी दूसरे वाङ्मय में प्राप्त न हो सके। उसमें आत्मा, मन और बुद्धि का भेद बड़े रोचक ढंग से उदाहरणों के साथ समझाया गया है। चाहे योगवासिष्ठ उपाख्यान-संग्रह ही क्यों न हो; किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वह भगवान् श्रीरामचन्द्र की शंकाओं के समाधान में महर्षि वसिष्ठ द्वारा लिखा गया है। मनुष्य की शंका की परिधि हो सकती है; परन्तु योगवासिष्ठ की शंका स्वयं भगवान् की शंका है और उसका समाधान एक परम तत्वविद् भगवद्भक्त के मुख से होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मानवश्रेष्ठ अर्जुन की शंकाओं का समाधान भगवान् श्रीकृष्ण ने किया था। अतएव श्रीमद्भगवद्गीता तथा योगवासिष्ठ के दृष्टिकोणों एवं उनकी शैलियों में अन्तर होना स्वाभाविक है। श्रीमद्भगवद्गीता के विषय में कुछ न कहकर यहाँ मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि योगवासिष्ठ का भी भारतीय दर्शनशास्त्र में एक विशिष्ट स्थान है। अपनी उपादेयता के कारण वह स्थान इतना ऊँचा है कि उसके लिए भारत आज भी गौरवान्वित है। उसमें भगवान् के मुख से निकला वेद-तुल्य श्रीमद्भगवद्गीता का कथन नहीं है; किन्तु वह हमारे सम्मुख एक तर्कप्रणाली एवं विचारधारा रखकर यह भार हमारे ऊपर छोड़ देता है कि क्या उचित है? मैं समझता हूँ कि योगवासिष्ठ की यही सबसे बड़ी महत्ता है।

# १

शुभे ! शुभे ! शुभे !

विन्ध्याचल के गहन कानन के बीच कान्तार-गामिनी युवती के बढ़ते हुए पद इस मर्मस्पर्शी सम्बोधन-स्वर को सुनते ही सहसा स्तम्भित हो गए। उसने चकित होकर चतुर्दिश पर्यालोचन किया तो पादुका-विहीन पद-चिह्नों से अंकित मालुधान तुल्य क्षीण कान्तार की अपेक्षा उसे और कुछ दृष्टिगत न हुआ। अनन्तर उस श्यामांगी युवती के अरुण विलोचनों की तारिकाएँ अपांगों के मध्य चकराती हुई अन्वेषण करने लगीं। वह ज्यों ही आई हुई ध्वनि की दिशा की ओर बढ़ने का उपक्रम करने लगी त्यों ही पुनः सुनाई पड़ा—

शुभे, ठहरो ! ठहरो ! ठहरो !

यह आवाज युवती के दक्षिण पार्श्व में स्थित तरु-समूहों के बीच से होकर आई। वह शीघ्रतापूर्वक उस ओर मुड़ पड़ी। उसने अभी थोड़ा भी अनुसरण न किया होगा कि अपने सामने एक विशाल स्कन्धीय, सुन्दर, श्री-सम्पन्न एवं

[ एक

राज-लक्षण-युक्त एक आगन्तुक युवक को देखा। उसे देखते ही नारी-सुलभ लज्जा से युवती के विलोल लोचन नमित हो गए। युवती का सामना होते ही आगन्तुक भी ठिठक गया। करुणा अपना गम्भीर आवरण उसके शिथिल एवं उदासीन मुख पर विस्तारित किए हुए थी। सद्यजात घृणा ने उसके मुख-मण्डल की कान्ति को और भी आवृत कर लिया। अतः उसके विषण्ण विलोचन जब दूसरी ओर देखने को उद्यत हुए तो उसकी अस्थिर इन्द्रियों की शिथिल प्रवृत्ति, सूखे तालु से उत्पन्न उष्ण उछ्वास, आतप से व्याकुल मस्तिष्क, क्षुधा द्वारा उद्भूत उदर की कचोट, कानन की गम्भीर निर्जनता द्वारा उत्पन्न भय एवं मन को कातर बनानेवाली शिथिलता आदि ने आगन्तुक पर एक साथ आक्रमण किया, जिससे वह विक्षिप्त की भाँति मुसकरा उठा। अन्धकार उसे चारों ओर से घेरने लगा। कण्टकाकीर्ण कानन के अवन्ध्य तरु-दल आगन्तुक से मिलने के लिए मानों अग्रसर होने लगे। आगन्तुक की इस दयनीय स्थिति पर भगवान् भास्कर 'मुसकरा उठे। रश्मियाँ परिहासोन्मुख हुईं। जब मरुत के प्रवाह में पड़कर वृक्षों की पत्तियाँ अनियंत्रित रूप में नाचने को उद्यत हुईं तो तरुओं को अपनी मर्यादा अतिक्रमण करना भला न लगा। तरुओं की इस भावना पर पत्तियाँ इठलाकर खड़खड़ाहट के साथ अट्टहास कर उठीं। अनन्तर अपने मनोवेग में उड़कर वे खूब नाचीं। मरुत ने सहानुभूति सूचित करते हुए पूछा—तुम तो

नाच चुकीं न ! अनन्तर पत्तियाँ करुणा-दृष्टि से तरु-दल की ओर देखने लगीं। इसपर वृक्षों ने केवल इतना ही कहा कि तुम तो अपने मनोवेग को सँभाल न सकी थीं। अपने मनोवेग की इस उच्छृंखलता पर पत्तियाँ कुछ विचार किए बिना ही भूमि को अपना अस्तित्व सौंपती हुई जीवन की निःसारता का परिचय देने लगीं। आगन्तुक का मन कानन का यह अनोखा स्वागत देखकर कहीं शरण पाने की लालसा में अधीर हो उठा। अनन्तर घबड़ाहट में घूमती हुईं उसके नेत्र की तारिकाएँ समस्त मनोविकारों को व्यवधानित करती हुईं दया-भिक्षा के निमित्त युवती की ओर आकर स्थिर हुईं और वह बोला—

शुभे, तृषित हूँ। थोड़ा जल-दान करोगी ?

आगन्तुक वेग के साथ युवती के समीप लड़खड़ाता हुआ आ पहुँचा। आगन्तुक पर चकित दृष्टि डालती हुई युवती पीछे हटने लगी। आगन्तुक शिथिलता के कारण अपनेको सँभाल न सका। वह पृथ्वी पर गिर गया। उसे अपनी इस निर्बल एवं दयनीय दशा पर स्वयं आश्चर्य होने लगा। युवती भी वहीं स्तब्ध हो गई। आगन्तुक की चेतन-शक्ति उस नव-परिचित युवती के साथ मैत्री स्थापित करने के हेतु उतावली होने लगी। उसने युवती की ओर अत्यन्त करुणा-भरे नयनों से देखा। अनन्तर किंचित् उठने का उपक्रम करता हुआ बोला—

मृत्यु के मुख में पड़ा हूँ। देवि, दया करो।

यह कहते हुए आगन्तुक का मस्तक कन्धों पर झुक गया। हृदय-दाह के विज्ञापन के निमित्त उसके उत्तमांग पर स्वेद ने अपना अस्तित्व स्थापित कर लिया। इसपर युवती ने समवेदना-सूचक स्वर में पूछा—

आप··· ·········

मैं। ओह, मैं तो कुछ नहीं हूँ।

इसे कहते-कहते आगन्तुक युवती के अत्यन्त समीप आने के कष्ट-साध्य उद्यम में प्रवृत्त दिखाई दिया। युवती आगन्तुक से दूर हटने की प्रक्रिया में प्रवृत्त हुई। इसपर आगन्तुक ने विह्वल स्वर में कहा—

शुभे, दया करो।

आगन्तुक की करुण-वाणी यहीं शिथिल हो गई। वह चाहता हुआ भी कुछ आगे न कह सका। उसका उत्तमांग भूमि की ओर झुक गया। युवती अपने कर में स्थित पात्रों की ओर देखती हुई बोली—

जामुन का रस और भात·········

मुझे दो, देवि!

आगन्तुक का दहिना हाथ आगे बढ़ गया। उसके अधीर नेत्र युवती के मुख पर पड़कर स्थिर हो गए। आगन्तुक के हृदय में इस आशा-संचार के होने से उसके शिथिल शरीर में चैतन्यता का अनुभव होने लगा। उसके मलिन मुख पर आलोक

आलोकित हो उठा। शरीर में स्फूर्ति का अनुभव होने लगा। अनन्तर अपने शरीर की समस्त शक्ति को एकत्रकर युवती के कर में स्थित पात्र पर दृष्टि डाले हुए विक्षत अंग तक्षक की भाँति कष्ट से घिसकता हुआ वह आगे बढ़ा। युवती शीघ्रता से पीछे हटती हुई बोली—

ठहरिए!

युवती के इस किंचित् कठोर स्वर में अधिकार तथा नियन्त्रण का भाव भरा था। आगन्तुक इसे सुनकर वहीं रुक गया। उसके नवीन उत्साह में शिथिलता आने लगी। वह अत्यन्त विह्वल हो गया। अनंतर अपनी मनोवेदना को छिपाता हुआ संयत स्वर में बोला—

मैं मर रहा हूँ, देवि!

आगन्तुक का स्वर भंग हो गया। अपने कानों में ही गूँज-कर स्वर-लहरियाँ वहीं समाप्त हो गईं। अब युवती के अधर खुले—

मैं चाण्डाल-कन्या हूँ।

अपना परिचय देती हुई युवती लज्जित हो उठी। आगन्तुक के सूखे नेत्र आश्चर्य के कारण विस्फारित हो गए। अनन्तर उसने अत्यन्त सावधानी से उसका निरीक्षण किया और अपने सामने खड़ी अत्यन्त मलिन एवं कुरूप चाण्डाल-कन्या को देखा, जिसका रूखा-बिखरा हुआ केश, कान्तिहीन मुख-मंडल, दया-विहीन दृष्टि, रक्त नेत्रों के बीच बुझी हुई ज्योति, नासिकाग्र पर उभड़े हुए

प्रस्वेद-कण, बैठा हुआ गण्ड, उभड़ा ठोकर, सूखी दूषिका, कपोलों पर थोड़ा जमा मैल, ग्रीवा की रेखाओं में चुकचुकाता मलिन स्वेद, कण्ठ में मुर्दों के नारों में पिरोए लौह आभूषण एवं कलाइयों में कपर्दिका-कंकण थे और वह रक्त विन्दुमय शवाच्छादन पहने हुई थी। कन्या के शरीर से दुर्गन्धि उद्-भासित हो रही थी। इसे देख वह आगन्तुक अत्यन्त विचलित हो गया और अपने दोनों करों से नेत्रों को ढककर सहसा बोल उठा—

हे भगवन् !

आगन्तुक की इस विह्वल एवं प्रलापियों की-सी दशा के कारण को समझकर युवती के कठोर मुख-मण्डल पर दयाद्रता उत्पन्न हो गई। युवती ने आगन्तुक के नेत्रों को लक्ष्य किया जो इस समय भय एवं घृणा के अतिरेक कारण कातर होकर उसके करतलों के बीच आश्रय ग्रहण किए हुए थे। आगन्तुक के इस विभेदक व्यवहार द्वारा युवती को किंचित् मात्र भी विरक्ति न हुई। क्योंकि उसे नित्य इस प्रकार के व्यवहारों का सामना करते-करते सहन पड़ गया था। भय तथा करुणा का नित्य साक्षात्कार करते-करते वह ऊब गई थी। अतः वह अपनी स्वाभाविक कठोर वाणी को विनम्र बनाती हुई बोली—

शुभ परिचय !

कुछ नहीं, कुछ नहीं।

आगन्तुक ने दूसरी ओर देखते हुए क्षुभित हृदय से कहा। इसपर युवती मुसकराकर बोली—

आप कोई कुलीन एवं राजवर्गीय पुरुष प्रतीत होते हैं।

युवती की आँखें मुसकराने लगीं। आगन्तुक अपने हाथों की उँगलियों को अव्यवस्थित रूप से केशों पर घुमाता हुआ बोल उठा—

मैं, मैं, ओह!

युवती ने लक्षित किया कि आगन्तुक के नेत्र तरल हो रहे हैं। उसकी मुद्रा सरल हो गई। इसे देख उसने मृदु कण्ठ से कहा—

मैं क्या सेवा कर सकती हूँ?

मेरी।

आगन्तुक के स्वर में व्यग्रता थी। युवती की आँखों में दया छलछला आई और वह बोली—

हाँ।

प्राण-रक्षा।

कैसे?

अन्न-जल द्वारा।

आगन्तुक की दृष्टि युवती के कर में झूलते हुए पात्र पर जाकर स्थिर हो गई। युवती पहले गम्भीर हो गई। अनन्तर उसने आश्चर्य से पूछा—

आप.........

ग्रहण करूँगा।

आगन्तुक ने अपने समस्त संस्कारों को क्षुधा की ज्वाला में हवन करते हुए कहा। पुनः दृढ़ होकर आतुरतापूर्वक उसने कहा—

हाँ, मैं।

आप?

युवती के नेत्रों में आश्चर्य व्यंजित हो गया। वह दो पग पीछे हटी। आगन्तुक उसके समीप खिसकने लगा। वह और पीछे हटने लगी। आगन्तुक का स्वर्ण-मुकुट भूमि पर गिरकर लुंठित हो पड़ा। आगन्तुक ने उधर ध्यान ही न दिया। मुकुट धूलि-धूसरित होकर अपनी श्री को खो बैठा। इसपर युवती ने कहा—

आपका मुकुट!

उँह!

आगन्तुक की वाणी में विरक्ति भरी थी। प्राण कण्ठ को आ रहा था। समस्त अवयव कम्पित हो रहे थे। क्षण-क्षण में मस्तक में चक्कर आता था। आगन्तुक अपनी इस अव्यवस्थित अवस्था में जब आगे बढ़ा तो उसका उत्तरीय एक कँटीले क्षुप में उलझ गया। युवती उधर निर्देश करती हुई बोली—

उत्तरीय!

उँह!

आगन्तुक ने उत्तरीय को शरीर से उतारकर फेंक दिया। अनंतर वह ज्योंही अग्रसर हुआ, युवती शीघ्रता से पीछे हट गई। आगन्तुक

अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर युवती की ओर दौड़ा। आवेग में उसका रत्न-जटित आभूषण गिर पड़ा। स्वर्ण-कोषमयी कृपाण की मुष्टिका क्षुप की शाखा से उलझ गई। उसने झुँझलाकर उसे कटि से खोल-कर फेंक दिया। युवती पलास-कुंज में छिप गई। जब वह पलास की शाखाओं को हटाता हुआ उसमें प्रविष्ट हुआ तो उसके शरीर की त्वचा काटों और सूखी शाखाओं के कठोर स्पर्श से छिल गई। कहीं-कहीं रक्त भी छलछला आया। युवती भयाकुल हो उठी। उस समय आगन्तुक की आँखों से ज्वाला निकल रही थी। वह हाँफ रहा था। उसकी यह आतुरावस्था इस समय दयनीय से भयंकर प्रतीत होती थी। उसने कुंज में प्रवेश करते ही कहा—

रस दो।

युवती चैतन्यतापूर्वक स्थिर स्वर से बोली—

आपको आतुरता शोभा नहीं देती।

आगन्तुक को जैसे ठेस लग गई। वह अपने स्थान पर स्थिर रह गया। अनन्तर युवती बोली—

आप द्विजातिवर्गीय देवपुरुष प्रतीत होते हैं। क्या आप चाण्डाल-कन्या का अन्न-जल ग्रहण करेंगे?

आगन्तुक अधिक गम्भीर हो गया। चाण्डाल-कन्या ने उसके हृदय पर स्वराघात करते हुए फिर कहा—

हमारा स्पर्श वर्जित है।

आगन्तुक का समस्त शरीर स्वेदमय होने लगा। अनन्तर

युवती ने संयत स्वर से कहा—

आपको चाण्डाल का आतिथ्य शोभनीय न होगा।

आगन्तुक का मस्तक नत हो गया। युवती ने धीरे से कहा—

अशुभ होगा।

आगन्तुक पलास की शाखा के सहारे खड़ा था। शाखा उसके हाथ से छूट गई। वह अपनी कटि पर झुक पड़ा। चाण्डाल-कन्या का भय दूर हो चुका था। उसने अपना पात्र भूमि पर रख दिया। उसकी आँखें हँस रही थीं। वह आगन्तुक के समीप आती हुई बोली—

आप द्विज-वर्ण के हैं और मैं चाण्डाल हूँ। भगवान् ने कितना बड़ा अन्तर हम दोनों के बीच उत्पन्न कर रखा है।

आगन्तुक का मस्तक और नत हो गया। युवती और समीप आती हुई बोली—

हाँ, और अन्तर देखिए। आपके शरीर की शोभा मणि-जटिल स्वर्ण-आभूषण बढ़ा रहे हैं और लौह आभूषण मेरी कालिमा में सहायक हो रहे हैं। आपका चीनांशुक सुन्दर, आकर्षक और मांगलिक मन्त्रों द्वारा अभिषिक्त है तथा हर्ष, आनन्द, उमंग एवं उत्साह के साथ गायन-वादन करते हुए वेद-वाणियों के मध्य पहनाया गया होगा और हमारा वस्त्र मनुष्यों की महायात्रा के समय बन्धु-बान्धवों के चीत्कार, किसी माता की भग्न होती ममता-जनित करुण पुकार, किसी पिता की पानी फिरती आशा से उत्पन्न दारुण व्यथा, किसी विधवा के उजड़ते संसार,

बालकों द्वारा भरी जानेवाली सिसिकियों और संसार के कातर आँसुओं का प्रतीक है। आपका चारु रूप अर्चनीय, शुभ एवं दयामय है और हमारा अपवित्र, त्याज्य एवं कठोर है। स्थूल दृष्टि तक में हम दोनों के बीच यह अन्तर प्रतीत होता है। इस अन्तर के हट जाने पर आप किस योग्य रह जायँगे ?

चाण्डाल-कन्या के मुख से निकलती दुर्गन्धि से आगन्तुक व्याकुल होकर मूर्छित होने लगा था। करुणा तथा दया की उस प्रतिमा के अत्यन्त समीप आकर युवती ने फिर कहा—

आपका मुकुट, आपका छत्र, आपका वीर्य और आपकी शक्ति—सभी आज आप से विमुख हो रहे हैं। कहिए, मैं चाहती हुई भी आपकी किस प्रकार सहायता करूँ।

आगन्तुक पत्तियों का सहारा लेता हुआ कमर-टूटे व्यक्ति के समान भूमि पर बैठ गया। उसके दहिने हाथ की मुट्ठी में छोटी-छोटी पत्तियाँ सुरकती हुई आ गई थीं। वह हाथ जीवन हीन सा पृथ्वी पर गिर पड़ा। मुट्ठी खुल गई। फटी और मुरझाई पत्तियाँ भूमि में बिखर गईं। इसे देख युवती शोकाकुल हो उठी। उसकी आँखें भर आईं। उसने समीप बैठते हुए कहा—

हम सबका जीवन एक है तथा पदार्थ ही जीवन को स्थिर रखते हैं। अतः पदार्थ आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं, आप इन्हें ग्रहण कर सकते हैं।

आगन्तुक का बुझता जीवन-दीप जैसे टिमटिमा उठा।

उसके कृतज्ञतापूर्ण नेत्र युवती की ओर घूम गए। युवती प्रगल्भता-पूर्वक मुसकराई। आगन्तुक अपनी इस मरणासन्न अवस्था में एक चाण्डाल-कन्या के मुख से दया की यह बात सुनकर चकित हो पड़ा। फिर उसकी लालायित आँखें जामुन के रस और भात पर जाकर स्थिर हो गईं। युवती उसके मुख के पास अपना मुख लाकर बोली—

भोजन दूँ ?

युवती के मुख से निकली दूषित वायु से विचलित होकर आगन्तुक ने दूसरी ओर मुख फेर लिया। किन्तु क्षुधा और प्यास से उसका प्राण निकलना चाहता था। अतः उसने व्याकुल होकर कठिनता से कहा—

हाँ।

आगन्तुक ने उदासीन स्वर से कहा। युवती भाण्ड की ओर देखती हुई बोली—

किन्तु.........

युवती लज्जित हो गई। आगन्तुक की जिज्ञासापूर्ण दृष्टि युवती के लज्जित मुख पर पड़कर स्थिर हो गई। किंचित् काल तक युवती की इस लज्जित मुद्रा को देखने के पश्चात् वह अत्यन्त शिथिल एवं क्षीण स्वर में बोला—

हाँ, क्या हानि है।

कहते-कहते आगन्तुक की पलकें सन्ध्याकालीन कमल-पखड़ियों

की तरह शनैः शनैः बन्द हो गई। उसका मुख-मण्डल नत हो गया। युवती ने कहा—

मेरा अन्न-जल ग्रहणकर प्राण-रक्षा कीजिएगा ?

करूँगा।

आगन्तुक के मुख की हँसती आशा लज्जित हो गई। युवती भाण्ड की ओर देखती हुई बोली—

आप चाण्डाल हो जायँगे ?

ऊँह !

उपेक्षापूर्वक कहता हुआ आगन्तुक दूसरी ओर देखने लगा। युवती बोली—

यहीं निवास………

क्यों ?

आगन्तुक युवती के इन तर्कों से चकित हो गया। युवती के वाणी-बद्ध कराने के इस प्रकार ने उसे लज्जित कर दिया। भूमि में उगे हुए मुंडी के पुष्प को चुटकियों से मसलती हुई युवती बोली—

हाँ, यहीं जीवन-यापन………

आगन्तुक एक बार और विचलित हो उठा। उसका मुख उतर गया। धमनियाँ पुनः शिथिल होने लगीं। वह अपने भावों को छिपाने का प्रयत्न करने लगा। उसकी जठराग्नि के उड़ते स्फुलिंगों के बीच पड़ी हुई क्षुधा उसकी अँतड़ियों को भस्म करने

लगी। तृष्णावेग से धमनियों में दाह उत्पन्न हो गया। जीवन शून्य-सा प्रतीत होने लगा। पलकें झुक गईं। इंद्रियाँ क्रिया-शून्य दिखाई दीं। प्राण कण्ठ में आने लगा। आगन्तुक को ऐसा अनुभव हुआ मानों रक्त पाटाम्बर पहने मृत्यु-देवी उसके सम्मुख खड़ी मुसकरा रही हो। आगन्तुक की दशा इस समय अत्यन्त दयनीय हो गई थी। उसने घबड़ाकर करवट लिया। इसे देख युवती ने कहा—

मुझे वरण·····

युवती के नेत्र नत हो गए। लज्जा मुख-मण्डल पर अपनी अरुणिमा के साथ फैल गई। आगन्तुक के नेत्रों में क्षण भर के लिए क्रोध उद्दीप्त होकर पुनः शान्त हो गया। उसने कुछ उत्तर न दिया। अनन्तर युवती दूर्वा खोटती हुई बोली—

प्राण से मूल्यवान् और क्या है ?

आगन्तुक ने चुभती दृष्टि से युवती की ओर देखने की इच्छा की; किन्तु देख न सका। इतने में युवती ने मृदुल स्वर से कहा—

नारी·········

चाण्डाल-कन्या ···········

आगन्तुक की क्षीण ध्वनि आगे न बढ़ सकी। वह मूर्छित होने लगा। युवती अपने प्रस्ताव का समर्थन न होते देखकर कुपित होकर बोली—

अच्छा, मैं चलती हूँ।

युवती भाण्ड की ओर बढ़ी। आगन्तुक की सतृष्ण आँखें युवती पर पड़कर स्थिर हो गईं और वह अधीर होकर बोला—

मृत्यु।

हाँ।

युवती ने व्यंग में उत्तर दिया।

मैं ?

आगन्तुक की जिह्वा बाहर निकल आई। युवती मुसकराई और पात्र की ओर संकेतकर कहा—

जीवन यहाँ है।

मैं कुछ······

आगन्तुक से अधिक न बोला गया। वह मानसिक और शारीरिक वेदना से व्याकुल हो रहा था। युवती पात्र लेकर खड़ी हो गई और चलने की मुद्रा प्रदर्शित करती हुई बोली—

जीवन की लालसा है ?

दया !

आगन्तुक ने अत्यन्त कष्ट से कहा। उसका मस्तक भूमि से लग गया। युवती ने व्यंग में फिर कहा—

चाण्डालिन क्या जाने !

आजन्म············

आगन्तुक कुछ बड़बड़ाया। युवती ने उपेक्षा-भाव से कहा—

अन्तिम सेवा श्मशान में कर दूँगी, यह तो अपना कर्म है।

आगन्तुक मृत्यु के मुख में जाना ही चाहता था। वह पृथ्वी पर उगी दूर्वाओं में जल प्राप्त करने के लिए उनमें अपना मुख रगड़ता हुआ बोला—

ऊँ—ऊँ।

युवती कुछ कठोर स्वर से बोली—

मैं जीवन-दान देती हूँ और आप.........

यह कहती हुई युवती भाण्ड को वहीं रखकर कुंज के बाहर चली गई। आगन्तुक की आँखें इस कठोर ध्वनि को सुनकर खुल गईं। उसने कुंज के बाहर जाती हुई युवती के हाथों में अपना जीवन देखा। वह उछल पड़ा। जामुन के रस का पात्र मुख से लगाकर पीता हुआ बोला—

सर्वस्व !

# २

पिताजी ! पिताजी !

धूलि-धूसरित एवं कुरूप चाण्डाल को देखते ही कन्या ने दूर से ही पुकारा। चाण्डाल का रूप किसी वन्य पशु से कम न था। वह वहाँ बैठा हुआ मृत-महिष की खाल उधेड़ रहा था। उसके हाथ रुधिरमय थे और अंगों पर महिष की हत्या करते समय खून के छींटे पड़कर सूख गए थे। कहीं-कहीं चरबी भी शरीर में लिपटी थी। उसके समस्त शरीर पर मक्खियाँ भनभना रही थीं। पीपल पर बैठे गृद्ध, आतापी आदि पक्षी लोलुप नयनों से महिष का यह अंतिम संस्कार देख रहे थे। कुछ दूर पर कुत्ते जीभ निकाले स्थिर बैठे दिखाई देते थे तथा वृक्षों की ओट में छिपे शृगाल आकुलित हो रह-रहकर अपना आसन बदल रहे थे।

चाण्डाल जब वृषभ का काला चमड़ा उधेड़ने लगा तो भीतर का श्वेत माँस छीले हुए कागदी नीबू की तरह दिखाई देने लगा। अपनी कन्या का यह प्रेम-मय स्वर सुनकर उसने स्नेह से कहा—

क्या है, बेटी !

यह कहता हुआ चाण्डाल चर्मप्रभेदिका से खाल उधेड़कर

[ सत्रह

उसे बलपूर्वक खींचने लगा। कन्या कुछ बोली नहीं। उसे लज्जा प्रतीत हो रही थी। खींचने पर खाल वृषभ की नली पर अटक गया। चाण्डाल ने छुरे से उसपर आघात किया, जिससे हड्डी कट्ट से बोलती हुई दूर जा छटकी। उसे लेने को कुत्ते आपस में लड़ गए। चाण्डाल ने चर्मप्रभेदिका को मांस में प्रविष्ट करते हुए पूछा—

विलम्ब किया?

कन्या ने पिता के कान में कुछ धीरे से कहा। चाण्डाल ने आश्चर्य के साथ पूछा—

यही?

चाण्डाल आगन्तुक की ओर चकित दृष्टि से देखने लगा। युवती नत-मुख हो गई। आगन्तुक ने आगे बढ़ते हुए नम्रता से निवेदन किया—

अनुग्रहकर मुझे अपना जामातृ स्वीकार कीजिए।

आगन्तुक के मुख की कान्ति अत्यन्त मलिन पड़ गई थी। उसका मुख धूमिल हो गया था। चाण्डाल आगन्तुक के गौर वर्ण, सुन्दर रूप, वेशभूषा आदि को देखकर हतबुद्धि-सा हो गया और विस्फारित नयनों से उसकी ओर देखने लगा। जब उसने अपनी कन्या की ओर देखा तो वह लज्जित खड़ी दूसरी ओर देख रही थी। अनंतर वह चर्मप्रभेदिका को बाऍं हाथ की हथेली पर धीरे-धीरे पटकता हुआ पूछने लगा—

आप तो किसी उच्च कुल के प्रतीत होते हैं ?

मैं ?

आगन्तुक अपने शरीर को आश्चर्य से देखने लगा। वह किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया था। चाण्डाल ने उसकी आश्चर्य-मुद्रा को देखकर कहा—

हाँ, आप।

मेरी तो समझ में कुछ······

आगन्तुक इतना कहते-कहते विकल हो उठा। वह कुछ स्मरण करना चाहता था, किन्तु कोई बात जैसे याद करने पर भी याद नहीं आ रही थी। वह कभी चाण्डाल-कन्या की ओर, कभी चाण्डाल की ओर और कभी स्वयं अपने चारों ओर आलोड़ित नयनों से देखता और घबड़ाता था। उसकी इस विकल-मुद्रा को देखकर चाण्डाल ने पूछा—

आप चाण्डाल-कन्या को ग्रहण करेंगे ?

हाँ, हाँ।

आगन्तुक शीघ्रता से बोल उठा। इसपर चाण्डाल ने साश्चर्य कहा—

क्यों ?

मैंने वचन दिया है।

आगन्तुक ने मन्द स्वर में कहा।

किसको ?

यह पूछता हुआ चाण्डाल आगन्तुक की ओर किंचित् झुक पड़ा। आगन्तुक ने लज्जित चाण्डाल-कन्या की ओर देखते हुए कहा—

आपकी कन्या को।

प्रयोजन ?

उसने मुझे जीवन-दान दिया है।

आगन्तुक के स्वर में कृतज्ञता भरी थी। इसे सुनकर चाण्डाल ने अत्यन्त समीप आकर पूछा—

किस प्रकार ?

आगन्तुक ने संयत स्वर में कहा—

उसने मुझे जीवन-दान दिया और मैंने अपना··· · ···

आगन्तुक के मुख पर विषाद की रेखा व्यंजित हो उठी। चाण्डाल विचार-मग्न दिखाई दिया। आगन्तुक ने फिर नम्रता-पूर्वक कहा—

अनुग्रहकर आप आज्ञा दीजिए।

यह कहते हुए आगन्तुक ने चाण्डाल को नमन किया। चाण्डाल विकल हो उठा। नियति का यह विचित्र नाटक देखकर उसकी बुद्धि कुंठित हो गई। उसकी आँखों के सम्मुख अन्धकार छा गया। वह दो पग पीछे हटता हुआ बोला—

यह क्या, यह क्या ?

पूज्य, मैं आपका आज्ञाकारी हूँ।

आगन्तुक का मस्तक और नत हो गया। चाण्डाल ने अधीर होकर पूछा—

आप राजपुरुष प्रतीत होते हैं।

मैं कुछ नहीं हूँ, केवल मनुष्य हूँ।

आगन्तुक ने अपने पहने हुए चीनांशुक पर दृष्टिपातकर कुछ स्मरण करने की चेष्टा करते हुए कहा। इसपर चाण्डाल बोला—

आपका रूप-रंग कहता है कि आप किसी श्रेष्ठ कुल के हैं।

तो इससे क्या?

यह कहते हुए आगन्तुक की दृष्टि चाण्डाल पर पड़कर स्थिर हो गई। चाण्डाल ने अपने चारों ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—

हमारी जीविका जघन्य है, हम हैं अस्पृश्य, हमारा दर्शन अशुभ है और हम हैं अकल्याण की मूर्ति। भला हमारे इस जीवन की गणना मनुष्य-जीवन में कैसे हो सकती है?

आगन्तुक कुतूहलाक्रान्त होकर चाण्डाल की ओर देखता हुआ बोला—

मैं समझा नहीं।

स्वर्ण-मुद्रा एक धातु-पदार्थ है। किन्तु यदि कोई ब्राह्मण हमारी उस मुद्रा से शुद्ध मन होकर अग्निहोत्र करता है तो वह निन्दित समझा जाता है। हमारा नित्य का कर्म सुरापान करना है; किन्तु यदि किसी ब्राह्मण के शरीर पर सुरा का एक बिंदु भी पड़ जाय तो वह शूद्र हो जाता है। यज्ञ के निमित्त शूद्रों का द्रव्य एकत्र

करनेवाला ब्राह्मण चाण्डाल-योनि का भागी होता है। हमारे धन तक को लेने की निषेधाज्ञा है।

चाण्डाल ने थोड़ा मुँह बनाते हुए फिर कहना आरंभ किया—

आगन्तुक, हम नहीं समझते कि हमलोगों की गणना मनुष्यों में क्यों की जाती है? हमें कुभोज्य पदार्थ ग्रहण करने में पाप नहीं लगता। हमें सेवा के पुरस्कार में उच्छिष्ट भोजन, जीर्ण वसन, सारहीन धान्य आदि प्राप्त होते हैं। द्विज के लिए जिनका ग्रहण निषिद्ध है, वही हमारे लिए उपयुक्त बताया गया है। द्विजातियों के पाप-कर्म के निमित्त जो दण्ड-व्यवस्था निश्चित की गई है, उससे भिन्न अति क्रूर व्यवस्था हमारे लिए है। जो ब्राह्मण सजातीय स्त्री को छोड़कर किसी विजातीय स्त्री को ग्रहण करता है, उसे चाण्डाल की उपाधि से कलंकित होना पड़ता है। यदि द्विजातियों के अत्याचार से उद्विग्न होकर बेसुधी में भी हमारा हाथ उनकी ओर उठ जाता है तो उस हाथ को कटवा देने की राजाज्ञा है। यदि हम भूल से भी ब्राह्मणों की पंक्ति में बैठ जायँ तो जानते हो कि क्या व्यवस्था है? उस दशा में हमारे कटि को दगवाकर या तो देश-निर्वासन का दंड मिलेगा अथवा हमारे नितम्ब का मांस काट लिया जायगा। यदि हम किसी विपथगामी ब्राह्मण का ध्यान उसके आचार-विचार की ओर आकृष्ट करें तो हमें उपदेष्टा समझकर राजा का कर्तव्य हो जाता है कि वह हमारे कानों में तथा मुख में तप्त तेल छोड़वा दे। किसी ब्राह्मण

को कुवाच्य कहने का प्रायश्चित्त हमें जिह्वा कटवाकर करनी पड़ती है। हमारे स्पर्श मात्र से स्नान की आवश्यकता पड़ती है। हम तो मनुष्य-योनि में नीचातिनीच श्रेणी के जीव हैं। अतः हमारी कन्या का संबंध क्या आपके लिए श्रेयस्कर होगा ? यह तो आपके लिए मृत्यु से भी बढ़कर कष्टकर होगा।

यदि मृत्यु से बढ़कर कष्टकर होता तो मैं उसे स्वीकार कैसे करता ?

आगन्तुक ने विचारपूर्वक दृढ़ता के साथ कहा। इसपर चाण्डाल ने सहानुभूति-सूचक शब्दों में पुनः कहा—

आपका जीवन नष्ट हो जायगा।

चाण्डाल को आगन्तुक पर दया आ रही थी। उसकी आँखों के सामने उसका भयानक भविष्य नाच रहा था।

जीवन तो नष्ट हो ही चुका था, पिताजी ! उसकी रक्षा तो मैंने की है।

रक्षा करने से ही उसपर तुम्हारा अधिकार नहीं हो गया।

मैंने तो अपनी सेवा का मूल्य माँगा था और वह स्वीकार किया गया।

सेवा का मूल्य नहीं होता, बेटी !

चाण्डाल ने गम्भीर निःश्वास परित्याग करते हुए कहा।

किन्तु यदि कोई सेवा का मूल्य देना ही चाहे ?

अस्तु, तू इन्हें छुटकारा दे सकती है।

नहीं, नहीं, मैं नहीं चाहता।

आगन्तुक दृढ़ता से बोल उठा। चाण्डाल-कन्या उसकी ओर देखकर मुसकराई। अनंतर चाण्डाल ने गंभीर होकर कहा—

किसी की परिस्थिति से अनुचित लाभ उठाना ठीक नहीं है, पुत्रि!

मैंने परिस्थिति से लाभ नहीं उठाया है, पिताजी! शरीर नष्ट हो जाने पर वह पुनः प्राप्त न होता। मैंने उसकी रक्षा की है। यदि इन्हें अपना शरीर प्रिय न होता तो यह मेरा अन्न क्यों ग्रहण करते। अतः अपनी प्रिय वस्तु की रक्षा का कुछ पुरस्कार तो देना ही चाहिए। यही समझकर........

मेरी समझ में कोई बात नहीं आ रही है। कौन चाण्डाल है और कौन ब्राह्मण? यहाँ यह कैसी परिस्थिति उत्पन्न है, जिसका कुछ भी भास मुझे नहीं हो रहा है। आप लोग यह क्या कह रहे हैं?

आगन्तुक अबोध की भाँति कह गया। उसकी इस दयनीय अवस्था से विचलित एवं क्षुब्ध होकर चाण्डाल बोला—

तुम दुखी तो नहीं हो, आगन्तुक!

मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आप निश्चिन्त रहिए। मुझे कुछ कष्ट नहीं है। मैं विश्राम तथा शान्ति का इच्छुक हूँ। इस समय मुझे सुखद छाया, शीतल जल और पूर्ण विश्रान्ति की आवश्यकता है। इस कंकाल को घुमाते-फिराते रहने के लिए कुछ अन्न

और कुछ रस की आवश्यकता अनिवार्य हुआ करती है। इनके अतिरिक्त और सब वस्तुएँ तो मिथ्या हैं, प्रदर्शन मात्र हैं।

यदि तुम्हारा कल्याण मेरी कन्या के पाणिग्रहण से प्रतीत होता हो तो इसमें मुझे क्या आपत्ति हो सकती है? जब कन्या ने स्वयं तुम्हारा वरण किया है और तुमने भी उसकी स्वीकृति दे दी है तो पिता के नाते मैं तो निमित्त मात्र हूँ। तुम्हें और पुत्री को अपने भविष्य की रचना स्वयं करनी है। मैं उस रचना में बाधक नहीं; किन्तु सहायक होना चाहता हूँ।

तब आशीर्वाद दीजिए।

आगन्तुक ने चाण्डाल के सम्मुख झुकते हुए कहा। चाण्डाल ने हर्ष से कहा—

पुत्र, ईश्वर में तुम्हारी रति हो, तुम्हारे ज्ञान-चक्षु उन्मीलित हों, धर्म की उन्नति हो, जगत् का कल्याण हो। एवं तुम दोनों का विवाह-बंधन मंगलमय हो, इससे अधिक और कौन-सा आशीर्वाद यह चाण्डाल दे सकता है?

यह यथेष्ट है।

आगन्तुक ने संतोष प्रगट करते हुए कहा। चाण्डाल ने अपनी कन्या को सम्बोधित करते हुए कहा—

पुत्री, तुम पतिपरायण बनो, इससे अधिक तुम्हारे पिता को और कौन-सी आकांक्षा हो सकती है?

चाण्डाल-कन्या की आँखें भर आईं। उसने अपने पिता के

चरणों पर मस्तक रख दिया। चाण्डाल स्नेह से कन्या को उठाता हुआ बोला—

बेटी, घर जाओ।

कन्या चलने को उद्यत हुई। इतने में चाण्डाल ने स्नेह-दृष्टि से आगन्तुक की ओर देखकर कहा—

पुत्र, यह तो मैं समझ ही गया कि तुम उच्च कुलावतंस हो। यह भी समझ गया कि तुम सत्पात्र हो। किसी शाप के कारण तुम्हें अपना परजीवन विस्मृत हो गया है। ये सब होते हुए भी तुम मनुष्य हो, यही समझकर मैंने अपनी कन्या तुम्हें दी है। हम सबका एक ही स्रष्टा है, अतः हम लोग एक ही जाति के हैं तथा हम लोगों का एक ही लक्ष्य है। अन्य सांसारिक सम्बन्ध तो लौकिक बातें हैं। वे हमारे सम्मुख मनुष्य की क्षणिक वर्तमान परिस्थिति का आभास मात्र उपस्थित करते हैं। दृष्टि में अन्तर डालने की चेष्टा करते हैं। स्वाभाविक भावनाओं एवं कार्यकलापों पर कृत्रिमता का आवरण डालते हैं। हमारी दृष्टि में ऊँच-नीच, भले-बुरे, छोटे-बड़े का भ्रम उत्पन्न करते हैं। फिर भी पुकारने के लिए कुछ नाम तो होना ही चाहिए।

यह सुनकर आगन्तुक कुछ विचार करता हुआ बोला—

लवण।

चाण्डाल ने मुसकराकर पूछा—

लवण?

हाँ।

## ३

माँ !

पर्ण की झोपड़ी में प्रवेश करती हुई चाण्डाल-कन्या ने अत्यन्त अल्हादित होकर अपनी माँ को पुकारा। माँ ने भी स्नेहपूर्वक उसे सम्बोधित किया—

बेटी !

चाण्डाल की अत्यन्त मलिन एवं दुर्गन्धिपूर्ण पत्तों से छाई झोपड़ी को देखकर आगन्तुक का मुँह उतर गया। सद्यगृहीत जामुन के रस की डकार से उसका चित्त पहले ही खिन्न हो चुका था, अतः उसका मुख कुरुचिपूर्ण दिखाई देने लगा। अब जब उसने यह देखा कि कैसे वातावरण में चाण्डाल-जीवन व्यतीत होता है तो उसकी समस्त इन्द्रियाँ विकल हो उठीं। उसका मुख उतर गया। पलकें ढक गईं। नासिका में सिकुड़न पड़ गई। पैर बाहर ठिठक रहने को बाध्य हो गए। हाथ की अँगुलियाँ खुलने एवं बन्द होने लगीं। वह सहसा भीतर प्रवेश न कर सका। कन्या माँ के पास जाकर बैठ गई। उसकी दृष्टि नत थी। नेत्रों में लज्जा थी। अधरों

में मुसकान छिपी थी। काया में चंचलता अन्तर्हित थी। माँ ने अपनी कन्या की आतुरता और द्वार पर किसी की छाया को देखकर पूछा—

कौन है ?

कन्या का मुख अधिक नत हो गया। आगन्तुक ने बड़े साहस के साथ भीतर प्रवेश किया और कन्या की माँ के सम्मुख नतमस्तक होकर नमस्कार करते हुए कहा—

अपने जमाता को आशीर्वाद दो, माँ !

चाण्डालिन स्तम्भित हो गई। वह जैसे आसमान से गिरी हो। कुछ कहने के निमित्त उसका खुला मुख खुला ही रह गया। उसे रोमांच हो आया। वह चकित दृष्टि से कन्या की ओर एकाग्र होकर देखने लगी जिससे आगन्तुक को आशीर्वाद देना भूल गई। अनंतर सोचने लगी कि यह कोई देवता उसके द्वार पर परिहास करने के हेतु आया है। उसकी कन्या इतनी भाग्यवान् होगी कि वह देवतुल्य किसी राजपुरुष की अर्द्धांगिनी बनेगी, इसकी कल्पना उसने स्वप्न में भी न की थी। अपनी माँ की इस चकित मुद्रा को लक्ष्यकर लज्जा से दबी जाती हुई कन्या शीघ्रतापूर्वक झोपड़ी के भीतरी भाग में चली गई। माँ आगन्तुक लवण को ऊपर से नीचे तक देखती हुई कुछ कहना चाहती थी; किन्तु वचन मुख के भीतर ही रह जाते थे। वह ठगी-सी अपने स्थान पर यथास्थित रही।

लवण ने अपनी सास के रूप को देखा। वह अपनी कन्या

की अपेक्षा अधिक कुरूप थी। उसका वर्ण कन्या से भी अधिक काला जली हुई लुकाठी के सदृश था। उसकी त्वचाओं में झुर्रियाँ पड़ी थीं जो प्रौढ़ावस्था के गत हो जाने की सूचना दे रही थीं। शरीर की मांस-पेशियों में शिथिलता आ गई थी। नेत्रों के निम्न भाग में घनी कालिमा जमी थी। कनीनिकाएँ छोटी-छोटी आँखों के भीतर घुसकर संसार से मुख मोड़ना चाहती थीं। नासिका का अग्र भाग फैला आ और मध्य भाग दबा हुआ था। कर्णफूल के वोझ से दोनों कानों के नीचे के भाग फट गए थे। कान के ऊपरी भागों में चार-पाँच नीम की सीकें अपने मूल में मैलों को बटोरे पड़ी थीं। कपोल सूखकर चिपक गए थे। ठोकर पठार सरीखे उभड़े हुए थे। स्थूल ओष्ठ बाहर को दोहरे हुए अपने मोटे और भद्दे रूप से विरक्ति उत्पन्न कर रहे थे। सिर के रूखे-सूखे बाल असं-यत रूप से शव के नारों से बँधे थे। कण्ठ में लोहे के आभूषण पड़े थे। वह किसी सुहागिन मरी स्त्री की चुनरी पहने हुए थी। उसके वस्त्र से मांस की गन्ध निकल रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि चुनरी रक्त से रँग कर श्वेत बूँदें मज्जा की बनाई गई हैं। वह श्मशान की किसी पिशाचिनी से कम भयंकर नहीं प्रतीत होती थी। किन्तु इस समय स्नेह के प्रभाव से वह शान्त दिखाई देती थी। उसने स्नेहपूर्वक कहा—

आओ !

लवण प्रवेश करता-करता बीच में ही रुक गया। कारण कि

झोपड़ी के भीतर से उत्कट दुर्गन्धि आ रही थी। उस समय झोपड़ी में जलती हुई अन्तिका किसी चिता से कम न थी। श्मशान के अधजले उल्मुकों का संग्रह झोपड़ी में पर्याप्त था। अन्तिका में जलते हुए उन उल्मुकों से चट्-चट् की आवाज आ रही थी। वहाँ एक भाण्ड में मांस पक रहा था और उससे निकली हुई भाप से झोपड़ी भर गई थी। उस उत्कट दुर्गन्धि के बीच किसी निरामिष-भोजीय व्यक्ति का ठहरना कठिन था। चाण्डाल की स्त्री लवण को पुकारकर दारुहस्तक से मांस चलाने लगी। उसने दारुहस्तक से मांस की कुछ बोटियाँ निकालकर जब देखा कि पका है या नहीं, तो उसकी आँखों में विचित्र ज्योति उत्पन्न हो गई। उसने बड़े प्रेम से बोटियों को पुनः भाण्ड में डालकर तोप दिया। इतने में युवती ने पुनः उसके पास आकर पूछा—

माँ, भात है ?

रखा है।

युवती अन्तिका के पास आकर भात के पात्र के समीप रुक गई और अपनी धोती को सँभालती हुई मुरुकुनियाँ बैठ गई। भात वर्धमान के पत्तों पर पलास के पत्तल से ढका था। उसने पत्तल उठाकर देखते हुए कहा—

माँ, हम लोग······

इतना कहती-कहती युवती लज्जा का अनुभव कर चुप हो गई। माँ ने स्वाभाविक स्वर से कहा—

रोटी बन जायगी।

और.....

युवती कुछ कहना चाहती थी; किन्तु रुक गई। माँ बोली—

ठीक है, साग लेती आ।

युवती प्रसन्न हो गई। उसकी मुद्रा में उत्साह दिखाई दिया और आँखों में ज्योति उत्पन्न हो गई। वह अन्तिका के समीप से उठ गई। जब वह कण्डोल और लवित्र लेकर बाहर आने लगी तो उसने प्रवेश-द्वार पर उदास और खिन्न लवण को ज्यों का त्यों खड़ा पाया। उसने आश्चर्य के साथ कहा—

आओ।

लवण ने विवश होकर प्रवेश किया। युवती ने कण्डोल और लवित्र एक ओर रख दिया। अनंतर माँ ने कहा—

बेटी, किलिजक बिछा दे।

अच्छा।

यह कहती हुई युवती ने झोपड़ी में किलिंजक बिछाकर उस-पर मृगचर्म फैला दिया। लवण के शरीर से पसीना छूट रहा था। आँखों में अश्रु आ गया था। किसी प्रकार अपने मन और इन्द्रियों को संयत करता हुआ वह बैठ गया। उसे अत्यंत क्लांत एवं एक ओर को झुका हुआ देखकर माँ ने अन्तिका में अग्नि ठीक करते हुए कहा—

उपधान दे दे।

युवती ने मुसकराकर पलाल का उपधान लवण के पास रख दिया। वह उसका सहारा लेकर लेट गया। युवती पुनः कण्डोल और लवित्र लेकर प्रसन्नतापूर्वक बाहर चली गई।

लवण ने पड़े-पड़े देखा कि झोपड़ी जीर्णावस्था को प्राप्त है। उसका केवल भूमि-भाग गोबर और मृत्तिका से लीपा हुआ था, इसके अतिरिक्त सब कुछ मलिन था। बहुत से सूखे चमड़े तथा मृगचर्म लपेटकर बाँधे हुए झोपड़ी में लटक रहे थे। ओर शव की सुतली का डोरा बँधा था और उसपर बहुत से. शवाच्छादन रखे थे। सायंकाल के भोजन के निमित्त मृगमांस केले के पत्ते से ढका हुआ रखा था। उनपर दल-बल सहित मक्खियाँ भनभनाती हुई पत्ते को छेदकर मांस तक पहुँचना चाहती थीं। झोपड़ी में कहीं भी काँसे अथवा पीतल के बर्तन का नाम तक न था। केवल मृत्तिकापात्र और क्रम से लघु एवं वृहत् गलन्तिका तथा पाषाणपात्र रखे थे।

श्मशान का संग्रहीत कोयला झोपड़ी में एक ओर रखा था और दूसरी ओर मद्य बनाने की सामग्री थी, यथा, कारोत्तर, चषक, भभका आदि। आसव-संधान-निमित्त महुआ, गुड़, शाकादि कारोत्तर में पड़े सड़ रहे थे। उनकी तीक्ष्ण गन्ध से झोपड़ी मसमसा उठी थी। झोपड़ी में एक ओर उन्माथ, मृग-बन्धनी, विहंगिका, शिक्य, नध्री, आबन्ध, मेधि, खनित्र, प्राजन, संदान, शूल आदि पड़े थे। मूँज की मंजूषा पर किंगरी,

आनक, ढक्का तथा आनद्ध एकत्र रखे थे। जिस स्थान पर आगन्तुक अर्द्धसुप्तावस्था में पड़ा था, वहाँ उंच्छशिल तथा उंच्छवृत्ति द्वारा संग्रहीत शिलादि कण्डोल में रखे थे। जब उसने करवट लिया तो उसे किसी वध किए हुए मनुष्य का वस्त्र, आभूषण आदि दिखाई दिया, जिससे प्रतीत होता था कि युवती के पिता ने आज ही किसी व्यक्ति का वध किया है। झोपड़ी की दीवार से लगा झूल रहा था लौह आभूषण, नारा, तेलपात्र और राजाज्ञा-चिन्ह। चाण्डालिन ने मांस को उतारते हुए पूछा—

यहाँ तुम कब आए?

आज ही।

लवण ने नीची दृष्टि किए उत्तर दिया। चाण्डालिन मांस के पात्र की ओर देखती हुई बोली—

कहाँ से?

यहीं जंगल से।

लवण ने सरलतापूर्वक कहा। जब चाण्डालिन ने मांस-पात्र खोला तो उससे निकली हुई भाप उसके मुखपर छा गई। जब वह अपने आँचल से पोंछने लगी तो उसका वक्षस्थल खुल गया; परन्तु उसे कुछ भी लज्जा प्रतीत न हुई कि यहाँ कोई आगन्तुक बैठा है। इसे देख लवण ने दूसरी ओर मुख फेर लिया। चाण्डालिन अपने कार्य में पुनः संलग्न हो गई। लवण अत्यंत उत्सुकतापूर्वक विवेचनात्मक दृष्टि से महानस का रूप

देखने लगा, जो किसी श्मशान से कम न था। चाण्डालिन जब गलन्तिका में आँटा गूँधने लगी तो उसके हाथ का मैल और दुर्गन्धि आँटे में मिल रही थी। लवण को उस समय तो अत्यंत ही घृणा मालूम हुई जब उसके मस्तक का पसीना टपककर आँटे में गिर गया। जब चाण्डालिन ने नाक छिनककर बिना हाथ धोए ही पुनः आँटा गूँधना आरंभ किया तो लवण को मिचली आने लगी। उसे वमन का बोध होने लगा। वह घबड़ा-सा गया। आँटा गूँधकर चाण्डालिन उद्धान से अंगार निकालकर अंगारधानिका में रखने लगी। अंगारों से हसन्ती को पूर्ण कर देने के पश्चात् उसपर उसने पिष्टपचन रख दिया और हाथ से रोटियाँ पो-पोकर ब्रह्मा के ब्रह्माण्ड की भाँति उसपर उन्हें उलटने-पलटने लगी।

लवण का शरीर पसीने से तर हो गया था। वह गर्मी से विकल हो उठकर बाहर जाना ही चाहता था कि युवती ने प्रवेश किया। उसके हाथ में चौराई से भरी कंडोल थी। लवण को देखकर वह मुसकराई। प्रेम से साग काटकर लौह स्वेदनी लाई। अन्तिका पर स्वेदनी चढ़ाकर उसमें सरसों का तेल डाल दिया। तेल कड़कड़ा जाने पर उसने साग छौंका और उसे कम्बि से चलाने लगी। इतने में उसकी माँ रोटियों को ढक-कर यह कहती हुई उठ खड़ी हुई—

मैं अभी आई।

माँ के बाहर जाते ही लवण के सूखे और उदास मुख की ओर प्रेम से देखती हुई चांडाल-कन्या मुसकराई। लवण ने मुसकान का उत्तर मुसकान से दिया; किन्तु उसके मुख पर फिर उदासी झलक उठी। युवती स्नेह से बोली—

जल दूँ ?

लवण ने स्वीकृति में मस्तक हिला दिया। युवती ने साग ढक दिया। साग सों-सों बोलने लगा। अनन्तर वह उठी। अलिंजर से जल लेकर लवण को बड़े प्रेम से दिया। जब वह जलपात्र अधर के समीप ले आया तो उसकी नासिका दुर्गन्धि से भर गई। वह मुख से पात्र लगा न सका। घृणा से उसका मुख बिदुर गया। उसे पीने से अनिच्छा हो गई। इसे देख युवती ने लवण के मनोभाव को समझकर स्नेह से कहा—

पी लो और .....

युवती के नेत्र लवण के नेत्रों से मिल गए। दोनों के नेत्रों की तारिकाएँ एक दूसरे के अन्तस्तल के भावों को समझने का यत्न करने लगीं। अनन्तर युवती की दृष्टि नत हो गई। लवण जल-पात्र को लिए थोड़ा विचारमग्न दिखाई दिया। उसका मुख लटक गया और हाथ में स्थित जलपात्र की ओर देखने लगा। अनंतर उसने जब युवती की ओर देखा तो उसका मुख उदासीन हो गया था। अब उसे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों वह जल पीने को संकेत कर रही हो। उसके जल न पीने से उसे

कष्ट हो रहा था। लवण ने जलपात्र को अपने नेत्रों के सम्मुख लाकर देखा तो जल स्वच्छ था; किन्तु उसमें दुर्गन्धि इस प्रकार निकल रही थी जिस प्रकार किसी रूपवती स्त्री के मुख से अपच के कारण बास निकला करती है। जलपात्र मलिन एवं टूटा था। उसे देखने से ही अनायास घृणा उत्पन्न होती थी। किन्तु जल का रूप स्वच्छ देखकर उसका मन थोड़ा प्रफुल्लित हो गया। उसने नेत्रों को बन्द कर लिया। जलपात्र अधर से लगाकर साँस रोक ली। जल की शीतलता के कारण जलपात्र भी शीतल था। अतः उसके स्पर्श से लवण को एक प्रकार की शांति का बोध होने लगा। दुर्गन्धि से एक बार उसका मुख विकृत अवश्य हुआ; किन्तु उस दुर्गन्धि को रसवती की दुर्गन्धि ने छोप लिया। जल पी लेने पर उसके नेत्र अनायास उन्मीलित हो गए। उसे ऐसा अनुभव हुआ मानों उसके जीवन की कथा का नवीन अध्याय यहाँ से आरम्भ हो रहा है। साग के जलते हुए पानी की सॉय-सॉय आवाज में उसका अतीत भी अपना अस्तित्व विसर्जन कर रहा था। वह बिछे हुए चर्म पर लेट गया। किंचित् सुख मिलते ही निद्रादेवी ने आ दबाया और उसने पैरों को फैला दिया।

ंमान-

## ४

लवण का जीवन चाण्डाल-कन्या पर अवलम्बित हो गया था। वह केवल उसकी पत्नी ही न हुई; अपितु उसकी आशा-निराशा, मोह-माया आदि सब कुछ की स्वामिनी हो गई। उसके अंक में उसने संसार को भुला दिया था और साथ ही भूल गया अपने अपनत्व को। अब उसे उसके समीप रहते हुए भयानक चाण्डाल-मण्डली के बीच ही शांति, सुख, सान्त्वना, संतोष आदि सब कुछ प्राप्त होता था।

एक दिन लवण को उदास देखकर युवती उसे लेकर मन बहलाव के निमित्त उत्तुङ्ग पर्वत शृंग पर चली आई। वह जो कहती लवण वही करता। लवण की इस अनपेक्षित एवं असंभावित उदासीनता का कारण जब स्वयं उसकी समझ में भी न आया तो उसने पर्वत पर चलने का प्रस्ताव किया था। उसका प्रस्ताव यद्यपि श्रम-साध्य था, फिर भी लवण उसे अस्वीकार न कर सका। मार्ग में तो उसकी उस खिन्नता में किसी प्रकार का परिवर्तन न हुआ; किन्तु ज्यों ही वह पर्वत पर पहुँचा त्यों ही उसका मन खिल उठा।

कष्ट हेश्रृंग पर जा एकान्त में स्थित एक चट्टान पर आसीन होकर वह प्रकृति के वास्तविक रूप का दर्शन करने लगा। नेत्रों के सम्मुख विस्तृत भूमि की असीमता एवं पर्वत की गुरुता ने लवण की उदासीनता में प्रफुल्लता उत्पन्न कर दी। उसने जब अपनी विवेचनात्मक भावुक दृष्टि का प्रसार किया तो उसे ऐसा मालूम हुआ कि यह सब किसी कलाकार की अनोखी सूझ है। किसी कलाकार ने अपनी कल्पना को मूर्तमान् बनाने के निमित्त इन सब दृश्यों का सृजन इसलिए किया है कि लोग यहाँ आकर रचना-चातुर्य्य द्वारा चमत्कृत हो कुछ काल के लिए अपने मनोविकारों को भुला सकें।

लवण को यहाँ वास्तविक शांति मिली। वह अधित्यका पर भ्रमण करता-करता एक शिला पर पुनः बैठ गया। उसके चरणों के पास चाण्डाल-कन्या बैठ गई। वह अपने चरणों में शरणार्थी तुल्य बैठी चाण्डाल-कन्या के विषय में सोचता-सोचता समाधिस्थ हो चला। उस समय का दृश्य ऐसा प्रतीत होता था मानों शशि को खण्ड-ग्रहण लगा हो, किंवा उज्वलता में मलिनता इसलिए सम्मिश्रित हुई हो जिससे संसार को दोनों का स्पष्ट अन्तर सुगमता से प्रगट हो सके। उस समय मरुत मुसकराता हुआ मानों सबसे पूछ रहा था कि रंग के भेद द्वारा भी क्या मन तथा आत्मा मे भेद उत्पन्न हो सकता है?

लवण प्रकृति के इस मनोरम रूप के पर्यालोचन में अपने

चाण्डाल-जीवन का ज्ञान भी भूल गया। प्रकृति ने उसे वर्त्तमान-जीवन से बहुत ऊपर उठाकर एक दूसरे ही प्रकार का मनुष्य बना दिया। प्रकृति के उस दर्शन में उसे स्वयं अपना दर्शन होने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसका अस्तित्व प्रकृति के अस्तित्व से भिन्न नहीं है। उसे मालूम हुआ कि वह प्रकृति का उसी प्रकार अभिन्न अंग है जिस प्रकार कदम्ब पर बैठा बोलता शुक, आम पर आसीन कूकती कोकिला और विस्तृत क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरणशील वातमृग, शम्बर एवं कृष्णाजिन आदि। उसने अपनी स्वर-लहरी में प्रकृति की सत्ता का बोध करानेवाले आम्रवृक्षासीन कोकिल, शुक आदि की स्वर-लहरियों का अभेद अनुभव किया। उसने विचार किया कि कोकिल, सारिका, तरु, सुमनादि एक ही प्रकृति की देन होते हुए भी भिन्न-भिन्न रूपों में प्रगट हैं, अर्थात् इनका एक ही स्रष्टा होता हुआ भी ये विलग आकार-प्रकार के दिखाई देते हैं। जिस प्रकार ये अपने सौंदर्य एवं गुणों का एक निराला संसार बना लेते हैं, क्या उसी प्रकार मनुष्य नहीं बना सकता? जिस प्रकार प्रकृति का अंग होता हुआ भी उसे अपना अस्तित्व भिन्न प्रतीत होता है तथा प्रकृति का अंश होकर भी वह उसके समवेत रूप पर आकर्षित होता हुआ शांति, सौन्दर्य एवं आनन्द का मधुर संचय कर रहा है उसी प्रकार इस अवस्था में अपनी भावनाओं एवं कल्पनाओं पर वह क्या आनन्दित होने का गर्व नहीं कर सकता? क्या उसकी यह शांति उसके हृदय की शांति का द्योतक नहीं है?

उस उत्तुंग पर्वत के चारों ओर प्रत्यन्तपर्वत समाधिस्थ योगी के तुल्य शान्त थे। मानों वे अनादि काल से प्रकृति के नाना रूपों का अवलोकन करते-करते किसी गुरुतम कल्पना की स्मृति में समाधिस्थ हो गए हों। उनपर लहलहाते हरित तरु-दल उनकी रोमावलियाँ थीं। उनपर स्वतन्त्रतापूर्वक चरतीं कपिला और श्यामा गाएँ उनकी शुक्ल और कृष्ण प्रवृत्तियों का भान करा रही थीं। पंक्ति-विहीन खड़े श्वेत अर्जुन-वृक्ष जहाँ-तहाँ उसके पके केश का स्मरण दिलाकर प्रौढ़ता का परिचय दे रहे थे। उनपर स्वच्छन्द विचरते निर्मल सोते वासुकी की भ्रांति कराते हुए उनकी सहन-शीलता तथा तन्मयता का परिचय दे रहे थे। कहीं-कहीं उत्थित धूम्र-समूह को देखकर भ्रम होता था कि उनके हृदयों में निरन्तर वास करनेवाली श्रद्धा उठकर ब्रह्म के श्रीचरणों में आत्मनिवेदन करने चली जा रही है।

लवण ने यह भी देखा कि उन प्रत्यन्तपर्वतों की उपत्यकाओं द्वारा निःसृत कितनी ही स्रोतस्विनियाँ किसी योगी के चरणामृत के तुल्य संसार को पावन करने के लिए अपनी चिर-यात्रा में संलग्न हैं। उनके उछलते हुए जलबिन्दु योगी के आशीर्वाद के समान जीवमात्र को शान्ति, सुख एवं शीतलता प्रदान करने की उत्तम आकांक्षा में मुसकरा रहे थे। लवण इस प्रकृति-पर्यालोचन में लीन ही था कि चाण्डाल-कन्या बोल उठी—

शव !

लवण का ध्यान भंग हो गया। उसके काल्पनिक संसार का लय हो गया। वह जैसे स्वप्न से जाग उठा और उसे ऐसा अनुभव होने लगा मानों यह सब कुछ क्षण-भर का खेल था। जब उसने सामने देखा तो कुछ लोग एक शव को लिए श्मशान को जा रहे थे। उसकी पहले की शान्त एवं प्रसन्न मुद्रा मलिन हो गई और अपनी पत्नी के कंधे पर हाथ रखता हुआ बोला—

हाँ।

चलो चलें।

चाण्डाल-कन्या ने उत्साह से कहा। उसका मुख प्रसन्न हो गया था। वाणी में उत्साह आ गया था। लवण ने सस्मित कहा—

नहीं, यहीं रहो।

क्यों?

चाण्डाल-कन्या मुसकराती हुई लवण के मुख की ओर स्नेह से देखती हुई बोली। लवण ने लहलहाते तरुओं की ओर देखते हुए कहा—

आह, कितनी अभिरम्यता है?

कहाँ?

अपने चारों ओर।

लवण की आँखों से भावुकता टपक रही थी। चाण्डाल-

कन्या ने हँसकर कहा—

यह तो मैं नित्य देखती हूँ।

मेरे नेत्रों से देखो।

लवण उसके मस्तक पर हाथ फेरता हुआ बोला। चाण्डाल-कन्या अपने चारों ओर आश्चर्य से देखती हुई पुनः बोली—

यह सब तो मेरे जन्म से ही ऐसे हैं।

क्या तुम्हें सुन्दर नहीं मालूम होता ?

सुन्दर कैसा ? मुझे तो यहाँ पत्तियों और लकड़ियों के अतिरिक्त कुछ और दिखाई नहीं देता है।

लवण उदास हो गया। उसे चुप देखकर वह बोली—

तुम पागल हो जाओगे।

मैं ?

लवण सूखी हँसी से हँसता हुआ बोला। चाण्डाल-कन्या ने प्रेमपूर्वक कहा—

हाँ, तुम।

क्यों ?

लवण गम्भीर हो गया। वह मुसकराकर बोली—

इन ऊबड़खाबड़ पत्थरों, भयानक वनों और बेलैस तरुओं में क्या रखा है ?

इनमें कितनी सजीवता है ?

लवण ने यह कहते हुए नेत्र बन्द कर लिए। चाण्डाल-कन्या हँसकर बोली—

सजीवता कैसी ? तुम यहाँ रहकर सचमुच पागल हो जाओगे। चलो चलें।

यह कहती हुई वह उठ खड़ी हुई। लवण ने विरक्त-स्वर में कहा—

श्मशान में जाकर क्या होगा ?

अरे, आज तुम्हें क्या हो गया ?

लवण ने हाथों को फैलाकर कहा—

अहा, चारों ओर लगी प्रकृति की यह सुन्दर फुलवारी, मरुत का सुखद स्पर्श और रश्मियों का हरी-भरी पत्तियों एवं शिलाओं पर सुन्दर विलास !

यह कैसा प्रलाप ?

चाण्डाल-कन्या ने बीच में टोंकते हुए कहा। इसपर थोड़ा आगे को झुकते हुए लवण ने कहा—

प्रलाप ! यह प्रलाप नहीं है। प्रिये, सुनो। नीचे कनैल पर बैठी सारिका कैसी मधुर वाणी बोल रही है ? उसमें कितनी तन्मयता है, कितनी संवेदना है।

चाण्डाल-कन्या ने एक लोष्ठ उठाकर सारिका पर फेंकते हुए कहा—

सारिका तुम्हें अच्छी लगती है ?

ओह, तुमने उसे व्यर्थ उड़ा दिया।

अच्छा, ठहरो। सारिका मार लाऊँ ?

क्यों ?

क्योंकि वह तुम्हें अच्छी लगती है।

तुम............

लवण कुछ आगे कहना ही चाहता था कि चाण्डाल-कन्या उसका हाथ पकड़कर उठाती हुई बोली—

तुम्हें सारिका अच्छी लगेगी, मनुष्य अच्छे नहीं लगेंगे। झोपड़ी की अपेक्षा यह भयंकर स्थान अच्छा लगेगा। चाण्डालिका पर गाने की अपेक्षा यहाँ गुनगुनाना अच्छा लगेगा। भला, यह भी कोई बात है ?

यह कहती हुई वह लवण को खींचने लगी। वह खिंचता हुआ उदास चल पड़ा। मार्ग में वर्तक-समूह प्रसन्नतापूर्वक वृक्षों पर फुदुक रहे थे। उन्हें देखकर वह खड़ी हो गई और धीरे से बोली—

ठहरो, ठहरो।

लवण वर्तकों की प्रफुल्लता देखकर मुग्ध हो गया। चाण्डाल-कन्या दो-चार ढेले उठाती हुई वृक्ष के समीप आई और ढेला मारना ही चाहती थी कि लवण हाथ उठाकर चिल्ला उठा—

हाँ—हाँ—हाँ—हाँ—हो—हो—हो।

वर्तक उड़ गए। चाण्डाल-कन्या क्रुद्ध हो पड़ी और लवण की ओर टेढ़ी दृष्टि से देखती हुई बोली—

यह क्या किया ?

प्राण बचा लिया।

लवण ने मुसकराते हुए कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या लालच भरी आँखों से आकाश में वर्तकों की ओर देखती हुई बोली—

इनका माँस अत्यन्त स्वादिष्ट होता है।

यों ही इनके कल रव में अमित रस है।

पागल !

चाण्डाल-कन्या ने उन्हें आकाश में विलीन होते देखते हुए कहा। अनंतर लवण ने कहा—

हत्या करती हो ?

कौन, मैं ?

यह कहती हुई चाण्डाल-कन्या लवण के पार्श्व में आकर खड़ी हो गई और प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखती हुई मुसकराई। लवण ने भी स्नेह से उसके स्कन्ध-भाग को हाथ से दबाते हुए कहा—

हाँ, तुम।

वह देखो।

चाण्डाल-कन्या ने आकाश की ओर इंगित करते हुए कहा। लवण ने ऊपर देखा कि एक श्येन उड़ते हुए वर्तकों पर झपट पड़ा है और उसके पंजे में फँसा हुआ एक वर्तक अपनी जीवन-लीला समाप्त करता चाँय-चाँय चिल्ला रहा है। श्येन वेग से उड़ता हुआ एक अश्वत्थ-वृक्ष पर उपविष्ट हो गया और उसका हृदय नोकीले पंजों से विदीर्ण करने लगा। वर्तक अपने क्षीण एवं दुर्बल चोंच से रक्षा करना चाहता था;

किन्तु श्येन के तीक्ष्ण चोंच ने एक ही आघात में उसकी इहलीला समाप्त कर दी। इतने में गगन-प्रदेश में विहंगमों का कोहराम मच गया, जिससे नभ-मण्डल अन्दोलित हो उठा। उस वृक्ष के सभी पक्षी भर-भर उड़ गए। शेष वर्तक प्राण लेकर वेग से चारों ओर भागे। लवण इसे देख हतबुद्धि-सा वहीं स्तम्भित रह गया। अनंतर चाण्डाल-कन्या ने मुसकराते हुए कहा–

यदि मैंने नहीं मारा तो उसने मार डाला।

लवण का हाथ चाण्डाल-कन्या के कन्धे से खिसककर झूलने लगा। अनंतर कुछ विचार करने के बाद सन्तोष से कहा—

हमने तो हत्या नहीं की।

और चाहे संसार करे।

चाण्डाल-कन्या ने व्यंग्य में कहा। लवण नीरव हो गया। इसपर उसने पुनः कहा—

मैं कुछ कहूँ? सुनोगे?

कहो।

लवण ने उदासीन-स्वर में उत्तर दिया। अनंतर चाण्डाल-कन्या ने कहा—

मैं श्मशान में पली हूँ।

जानता हूँ।

वहाँ राजा-रंक सभी समान रूप में आते हैं।

हाँ।

लवण ने थोड़ी दूर पर बहती हुई नदी की ओर देखते हुए

हुँकारी भरी। चाण्डाल-कन्या ने आगे कहा—

श्मशान में लोगों के मुख से मैंने बहुत सी बातें सुनी हैं।

अवश्य सुनी होंगी।

यह कहते हुए लवण की दृष्टि नदी की ओर से हट गई। अनंतर चाण्डाल-कन्या ने मुसकराकर कहा—

श्मशान में पहुँचकर लोग प्रायः दार्शनिक बन जाते हैं।

क्यों ?

लवण की दृष्टि उसकी ओर घूमकर स्थिर हो गई। वह हँसकर बोली—

इसलिए कि श्मशान से किसी का कोई वश नहीं चलता।

और।

लवण ने साँस भरते हुए पूछा। इसपर उसने फिर कहना आरंभ किया—

श्मशान में आनेपर शरीर की निःसारता प्रगट हो जाती है। उस समय दुनिया-भर के ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, तर्क आदि समवेत होकर भी शव में जीवन का संचार नहीं कर सकते। यदि वेदान्ती यहाँ आकर गम्भीर हो जाते हैं तो तार्किक अपने अकाट्य प्रमाणों का आश्रय लेने लगते हैं। ब्राह्मण या चाण्डाल कोई भी हो, मृत्यु से नहीं बचाता। चिता की ज्वाला धाँय-धाँय करती हुई सबके साथ खेलती है। उस समय लोग अनायास क्या कहने लगते हैं, जानते हो ?

यह सुनकर लवण की जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि चाण्डाल-कन्या की दृष्टि से मिल गई। इसपर उसने स्थिर होकर फिर कहना आरम्भ किया—

यही कि यह शरीर मिथ्या है, इसका समय आ गया, जीवन के दिन इने-गिने रहते हैं, संसार में कोई अमर होकर नहीं आता, एक दिन सबकी यही दशा होती है, मृत्यु से कोई बच नहीं सकता, आदि-आदि।

लवण की आश्चर्य से भरी हुई विस्फारित दृष्टि युवती की ओर स्थिर हो गई, जैसे उसने ऐसी बातें पहले कभी सुनी न हों। उसे ये बातें बड़ी रोचक प्रतीत हुईं, और उसने आतुरता के साथ पूछा—

और।

और क्या ? जो कापालिक श्मशान-भूमि में नगरों की तरह घूमते हैं, जो योगी श्मशान-जगाते हैं एवं जो तान्त्रिक श्मशान को तीर्थ समझते हैं, उनके भी ज्ञान और संयम की स्थिति उस समय डवाँडोल हो जाती है, जब वे यह सोचते हैं कि मृत्यु अपने एक ही दण्ड से सबका स्पर्श समान रूप से करती है। श्मशान की अग्नि वहाँ के बसनेवालों को भी जलाने में संकुचित नहीं होती और कोई कैसा ही महान् व्यक्ति क्यों न हो, सबके शरीरों की राख लोगों के पैरों तले पड़ती ही है।

यह सब तुमने क्या कहा ?

लोग इसे विवेक कहते हैं।

यह कब उत्पन्न होता है ?

-अरे, तुम नहीं जानते ? मनुष्य की कातर तथा करुण अवस्था में ज्ञान उत्पन्न होता है। मनुष्य पीड़ित होकर बुद्धि, मन आदि को मथकर उसका अनुभव करने लगता है। लोग ज्ञान की बातें बहुधा श्मशान में करने लगते हैं। किन्तु वे ही लोग जब श्मशान-भूमि से लौटकर पवित्र हो जाते हैं तो उनकी दृष्टि एकदम बदल जाती है। वह दृष्टि जो श्मशान में सब मनुष्यों को अपने ही जैसा देखती है, बाहर आने पर उसपर आवरण पड़ जाता है। सब बातें स्वप्न की तरह भूल जाती हैं।

लवण ध्यानपूर्वक सुनता-सुनता पूछ बैठा—

क्यों ?

इतने दिनों श्मशान में रहकर तुमने इतना भी नहीं जाना ?

चाण्डाल-कन्या ने आश्चर्य से कहा। इसपर लवण ने गम्भीरतापूर्वक उदासीन स्वर में कहा—

जानता कैसे ? किसी ने बताया ही नहीं।

अरे, यह भी क्या बताने की बात है ?

चाण्डाल-कन्या ने हँसकर कहा। इसपर लवण बोल उठा—

तब ?

लोगों से सुन ली जाती है और आँखों से देख ली जाती है।

चाण्डाल-कन्या ने मुसकराते हुए कहा। लवण ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

किन्तु मैं तो कुछ न जान सका।

इस कथोपकथन के समय चाण्डाल-कन्या के हाथ में एक ढेला उछल रहा था और आकाश में बगुला उड़ा चला जा रहा था। उसने उसे लक्ष्यकर ढेला चलाया और वह जाकर उसके पैर में लगा। वह चिल्लाता हुआ भूमि पर गिर पड़ा; किन्तु तुरन्त ही अपने को सँभालकर फिर आकाश में उड़ चला। लवण ने उस भयाकुल एवं प्राण-रक्षा के हेतु कातर बगुले को देखा कि शीघ्रतापूर्वक जाकर वह एक जामुन के वृक्ष पर बैठ गया है। अनंतर अपनी चोंच से वह चोटीले पंख को ठीक करने लगा। प्राण-रक्षा के इस उपक्रम में सफल होने पर उसकी व्यथा कम हो गई। अनन्तर लवण ने कहा—

तुम्हें दया नहीं आती ?

कैसी दया ?

यह कहती हुई चाण्डाल-कन्या अट्टहास कर उठी। दया का नाम सुनते ही उसका मुँह बिचक गया था। इसे देख लवण का कोमल हृदय सहसा काँप उठा और उसने सहमते हुए कहा—

उसमें भी अपना ही ऐसा जीव है।

जीव !

हाँ।

जीव ही तो जीव का आधार होता है। देखो, बगुला मछली खाता है। मछली अपने अंडों और जल की कीड़ियों को खाती

है। हम बगुले को खाते हैं और सिंह हमें खा जाता है।

किन्तु मनुष्य......

लवण कुछ आगे कहना चाहता था कि चाण्डाल-कन्या बीच में ही बोल उठी—

समय पर सिंह मनुष्य को खाता है और मनुष्य सिंह को। जिस समय जो बलवान् पड़ता है वह अपनी शक्ति से लाभ उठाकर इच्छापूर्ति और स्वार्थपूर्ति करता ही है। जीवितावस्था में गृद्ध आदि मांसाहारी पक्षी मनुष्य को देखकर भागते हैं; किन्तु मरते ही उसके हृदय को विदीर्ण करने बैठ जाते हैं। मछलियाँ मुर्दों को कुतरने लगती हैं। यों तो सभी ब्रह्ममय है। ऐसी दशा में कौन किसको खाता है?

ब्रह्म कैसा?

लवण ने कुछ विचारते हुए पूछा। इसपर चाण्डाल-कन्या ने हँसकर कहा—

भला मैं ब्रह्म की बात कैसे कह सकती हूँ, क्योंकि मुझे अधिकार नहीं है। जब लोग सुनेंगे तो हँसेंगे। तुम भी मन मे हँसोगे। मैंने श्मशान में पण्डितों के मुख से जो बात सुनी है उसी को दुहराती हूँ। वह यह कि भगवान् ने सब को बनाया है। वही उसका रक्षक और संहारक भी है। अपने शरीर में अगणित कीटाणु हैं। हम नित्य साँस के साथ न जाने कितने जीवों की हत्या करते हैं। जब आत्मा शरीर को छोड़ जाती है तो इसी शरीर से उत्पन्न

होकर कीड़े इसे खाने लगते हैं। इससे यह सिद्ध है कि ब्रह्म ही ब्रह्म को खाता है। अतः इसमें हत्या कैसी? जब प्राणी को पेट है और उसमें भूख लगती है तो उसे भरना ही चाहिए। कोई उसे अन्न, दूध, फल, फूलादि से भरता है और हम लोग मांस से भरते हैं।

यह जीवन?

जीवन तो क्षेत्रों का साधारण पौधा है। यह जल मिलने पर बढ़ता और फूलता-फलता तथा न मिलने पर सूख जाता है। इसी प्रकार जब तक शरीर को पदार्थ-रसों द्वारा सींचा जाता है तब तक यह चलता है, नहीं तो गिर जाता है। उस दिन तुम्हारी अवस्था भी तो ऐसी ही थी।

तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ था।

छिः, कष्ट कैसा? ज्ञानी सुख-दुःख को बराबर बताते हैं। दुःख अज्ञानी को होता है। अतः सुख-दुःख की समस्या तो ज्ञान-अज्ञान की समस्या हुई। यह अपने मन की भावना है। श्मशान में कापालिक नाचता है और गृहस्थ रोता है। तान्त्रिक श्मशान की ओर दौड़ा आता है और अन्य मनुष्य उससे दूर भागते हैं। योगी श्मशान में गाता है और भोगी आँसू बहाता है। जहाँ योगी अपना शरीर-त्याग सुख से करता है वहाँ भोगी छटपटाता, रोता और कुहराम मचाता हुआ करता है। हमें किसी राज-अपराधी का मस्तक छिन्न करते कुछ भी दुःख नहीं होता;

किन्तु दूसरे देखनेवाले मूर्च्छित हो जाते या रोने लगते हैं। देखो, कैसी सुन्दर सारिका है।

यह कहती हुई अपने ऊपर आकाश-मार्ग से जानेवाली एक सारिका पर उसने ढेला चला दिया। सारिका चिल्लाती हुई भूमि पर गिर पड़ी। उसके प्राण निकलने के लिए शरीर को उछालने लगे और नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली। चाण्डाल-कन्या दौड़कर उसके समीप आई। सारिका ने अपनी शक्ति-भर भागना चाहा ; किन्तु अंत में वह उसके कठोर हाथों में पड़ गई। छुटकारा पाने के प्रयत्न में अधिक उछलने के कारण उसकी समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं और चिल्लाते-चिल्लाते स्वर-भंग हो गया। अन्त में उसने चोंच चलाना आरम्भ किया। इसपर चाण्डाल-कन्या कुपित हो गई। उसने उसका कण्ठ मरोरकर दबा दिया। उसका पेट फट गया और गर्भ फूटकर बाहर निकल आया। इस समय चाण्डाल-कन्या के दोनों हाथ खून से लथपथ थे। उसने घृणापूर्वक उसे दूर फेंक दिया। गृद्ध उसपर टूट पड़े। इसे देख लवण ने काँपते हुए अपना मुख फेर लिया। चाण्डाल-कन्या पलास के पत्तों से हाथों को पोंछती हुई लवण से बिना कुछ कहे ही नीचे की ओर चल पड़ी। लवण भी करुणा-भरी आँखों से सारिका की ओर देखता हुआ उसका अनुगमन करने लगा।

चाण्डाल-कन्या थोड़ी ही दूर गई होगी कि मार्ग में उसे भयानक काला सर्प गेडुरी-मारे दिखाई दिया। वह सतर्क हो गई।

सर्प भी तन गया। वह फुफकारने लगा। इससे वह कुछ भी भयभीत न हुई और उसके नेत्रों से अग्निज्वाला निकलने लगी। वह स्वयं सर्प पर टूट पड़ना चाहती थी। सर्प भी आगे बढ़ने का साहस न कर सका। इतने में लवण दौड़कर पास आया और इस भयानक दृश्य को देखकर ठिठक गया। वह बहुत घबड़ाया हुआ था और अपनी पत्नी को पीछे खींचकर भागना चाहता था। इसपर चाण्डाल-कन्या स्थिर होकर बोली—

ठहरो।

लवण ने देखा कि चाण्डाल-कन्या का मुख और क्रुद्ध हो गया। उस समय उसपर खून नाच रहा था। वह मृत्यु को देखकर स्वयं भयंकर मृत्यु-रूप हो गई थी। अपने पास पड़ी हुई सूखी लकड़ी उसने शीघ्रता से उठा ली और सर्प की ओर चल पड़ी। इसे देख लवण चिल्ला उठा—

कहाँ?

चुप।

चाण्डाल-कन्या थोड़ा मुड़कर उसे डपटती हुई फिर आगे बढ़ने लगी। अन्त में लवण व्याकुल-सा उसके पास आ गया। वह उसे बाएँ हाथ से पीछे करती हुई फिर अग्रसर हुई। पहले तो सर्प ने उसकी ओर बढ़कर आक्रमण करना चाहा; किन्तु उसे स्थिर देखकर डर गया। अब वह दबककर पत्थरों की दरार में सनसनाता हुआ भागा। चाण्डाल-कन्या उसके पीछे

दौड़ी। लवण घबड़ाकर उसे अपने दोनों हाथों से पकड़ता हुआ बोला—

क्या प्राण दोगी ?

प्राण देना खेल नहीं है।

अच्छा, जाने दो।

लवण की साँस वेग से चल रही थी। अब चाण्डाल-कन्या कुछ स्थिर हो चली। लवण के इस प्रेम-सूचक व्यवहार को देखकर वह खिल उठी और मुसकराकर पूछा—

क्यों ?

वह भाग गया।

क्या अपने मन से भागा ?

तब ?

भय से भागा।

उसे भय कैसा ?

लवण ने मस्तक के पसीने को पोंछते हुए पूछा। चाण्डाल-कन्या ने उत्तर दिया—

उसे भी अपनी जीवन प्रिय है।

तुम्हें ?

मुझे भी प्रिय है। यदि आज मैं इसके सम्मुख से भाग जाती तो कल किसी दूसरे पर आक्रमण करता।

क्यों ?

देखा नहीं, कैसा तन गया था।

किन्तु नियति को कोई नहीं जानता।

लेकिन नियति भी पुरुषार्थ के सम्मुख लज्जित हो जाती है, क्या इसे तुमने नहीं सुना है?

# ५

लवण के सुन्दर एवं गठित शरीर को देखकर श्मशान में एकत्र व्यक्तियों का ध्यान उसकी ओर सहसा आकृष्ट हो गया। सबने मन में कहा कि यह अवश्य कोई देवता है, जो पुण्य-क्षय हो जाने के कारण चाण्डाल-योनि में उत्पन्न होकर पूर्व-जन्म के पापों का प्रायश्चित्त कर रहा है। उसके शरीर पर कफन का परिधान देखकर लोगों के सरल हृदयों में अनायास क्षोभ उत्पन्न हो गया। चाण्डाल-कन्या को उसके साथ देखकर लोगों ने अनुमान किया कि यह अवश्य उसकी पत्नी होगी। दो-एक मनुष्यों ने भरे हुए हृदयों से कह भी दिया कि भगवान् की कैसी विचित्र गति है। कहाँ यह फूल-सा देव तुल्य युवक और कहाँ यह कुरूपा राक्षसी!

इसी समय श्मशानाधिपति चाण्डाल घूमता हुआ उधर आ पहुँचा। उसने लवण को देखकर प्रेमपूर्वक संबोधन किया—

लवण!

जी!

लवण अपने श्वशुर के सम्मुख मस्तक झुकाकर खड़ा हो

गया। चाण्डाल-कन्या वहाँ पाए हुए कफन आदि को प्रसन्नता से देखने लगी। इतने में चाण्डाल ने कहा—

पुत्र, तुम्हें अब सब काम स्वयं सँभालना चाहिए। श्मशान ही अपनी जीविका है। बिना परिश्रम के फल नहीं प्राप्त होता। भगवान् ने अपने भाग्य में श्मशान की कमाई दी है। अपनी पैतृक सम्पत्ति यही है। अतएव तुम्हें अपना ध्यान इसी ओर लगाना चाहिए।

लवण ध्यानपूर्वक सुन रहा था। अनंतर चाण्डाल ने आदेश दिया—

जाओ, चिता के लिए भूमि साफ करो।

लवण चुपचाप जल के समीप आया। जले कोयले, भग्न भाण्ड, उल्मुकादि को हटाता हुआ भूमि साफ करने लगा। उस समय जब उसके हाथों में जली हुई अस्थियाँ आ जाती तो वह घृणा से मुँह बिचका लेता। किन्तु यह सोचकर कि अब उसे अपना जीवन-यापन यहीं करना है, वह अपनी सद्वृत्तियों को कुचलता हुआ पुनः कार्य में संलग्न हो जाता। इसी समय कोयला साफ करते-करते उसे अकस्मात् स्वर्ण-कुण्डल मिल गया। वह उसे देखकर फेंकना ही चाहता था कि चाण्डाल-कन्या ने समीप पहुँचकर पूछा—

क्या है?

कुण्डल।

देखूँ।

चाण्डाल-कन्या ने वह कुण्डल लवण के हाथ से ले लिया। वह प्रसन्न हो गई और अपने कानों में पहनती हुई मुसकराकर बोली—

देखो, अच्छा लगता है?

लवण जल में कोयला फेंक रहा था। उसकी ओर देखकर उसने कहा—

हाँ।

अनंतर चाण्डाल-कन्या ने आनन्दित होकर कहा—

मैं मिट्टी लाऊँ?

हाँ।

उसे मिट्टी ले आने की स्वीकृति देकर वह नदी का जल उछाल-उछालकर भूमि धोने लगा। चाण्डाल-कन्या कंडोल में मिट्टी ले आई और धोए हुए स्थान पर दोनों मिट्टी फैलाने लगे। इसी समय चाण्डाल-कन्या ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—

कुण्डल कितना सुन्दर है?

हाँ, सोने का है।

लवण ने सामान्य रूप से उत्तर दे दिया किन्तु चाण्डाल-कन्या का इतने से संतोष न हुआ। कारण कि वह कुण्डल के सम्बन्ध में और कुछ सुनना चाहती थी। अतः उसने उत्सुकता-पूर्वक पूछा—

कल जो सुहागिन आई थी, उसी का होगा ?

होगा।

लवण ने उदासीन-स्वर में कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या लवण की विरक्ति से क्षुभित हो उठी और उसने व्यंग्यपूर्वक कहा—

तुम्हें तो कुछ अच्छा नहीं लगता।

क्यों ? बहुत अच्छा लगता है।

लवण ने गम्भीर निःश्वास लेते हुए कहा। अनंतर चाण्डाल-कन्या श्मशान में रखे एक युवक के शव की ओर निर्देश करती हुई उमंग के साथ बोली—

मैंने तुम्हारे लिए इस शव का कफन रख लिया है।

जिसकी हम चिता लगा रहे हैं ?

हाँ।

चाण्डाल-कन्या इस समय बड़ी प्रसन्न दिखाई दे रही थी और सोचती थी कि लवण भी अवश्य प्रसन्न होगा। किन्तु वह उदास हो गया। इतने में चाण्डाल ने आदेश दिया—

शीघ्र चिता लगाओ।

इसे सुनते ही लवण लकड़ी लेने चला। इसपर चाण्डाल ने सस्नेह कहा—

लवण, तुम बैठो। क्योंकि तुम्हें लकड़ी ढोने का अभ्यास नहीं है। यहीं विश्राम करो।

लवण सिर झुकाए पीपल-वृक्ष के मूल में स्थित अङ्गार-

धानिका के पास आकर बैठ गया। अनंतर चाण्डाल-कन्या श्मशान-भूमि में सोने-चाँदी एवं रत्नों को खोजने लगी। थोड़ी देर में चिता लगा लेने पर चाण्डाल ने पुकारकर कहा—

लवण, अग्नि ले आओ।

लवण सरपत के जुट्टे पर अग्नि रखकर चिता के समीप ले आया। अनंतर चाण्डाल ने मृत युवक के पिता से कहा—

आइए।

इसे सुनकर पिता जैसे स्वप्न से जाग उठा। उसने अधीर नेत्रों से देखा कि उस रचित चिता के काष्ठ-समूह के भीतर उसके प्रिय पुत्र का मृत शरीर रखा हुआ है। इसे देखते ही 'हा पुत्र, हा पुत्र' कहता हुआ वह चिता पर गिर पड़ा। श्मशान-भूमि में उपस्थित उसके बन्धु-बान्धव जब उसे पकड़कर अलग करने लगे तो उसके अत्यंत दारुण विलाप से श्मशान-भूमि काँप उठी। सबका हृदय हिल गया। चाण्डाल शान्तिपूर्वक स्थिर रूप से खड़ा रहा। लवण की करुणा-भरी दृष्टि उस ओर घूम गई। चाण्डाल-कन्या पूर्ववत् अपने अन्वेषण-कार्य में संलग्न रही मानों कुछ हो ही नहीं रहा है। इसी समय चाण्डाल बोला—

भाई, आपका पुत्र देवता था। किसी कारण इस मृत्यु-लोक में आ गया था। अब उसका प्रायश्चित्त कर पुनः चला गया। भला, इसमें दुःख कैसा? आइए, अग्नि लीजिए।

चाण्डाल इस भूमि का राजा था। उसे कितनी ही बार इस

प्रकार की बातें करने का अवसर मिल चुका था। यह उसका दैनिक कार्य था। अतः विलम्ब होता देख उसने फिर कहा—

विलम्ब न कीजिए। इस समय आप ऐसे बुद्धिमान् पुरुष को यह अधीरता शोभा नहीं देती।

लोगों के समझाने-बुझाने से पिता की व्यथा कम हो चली थी। इस समय वह हिचकियाँ लेकर रो रहा था। लोगों ने उसे पकड़कर चिता की परिक्रमा कराई। अनन्तर पिता ने पत्थर का कलेजा कर पुत्र के मुख में अग्नि दी। बाद में चाण्डाल का संकेत पाकर लवण तथा अन्य उपस्थित व्यक्ति चिता के निम्न भाग में सरपत से आग लगाने लगे। चिता प्रज्वलित हो उठी। इस समय पिता मूर्छित-सा लोगों के बीच बैठ गया। लवण भी उसी पीपल के नीचे बैठकर स्थिर रूपसे प्रज्वलित चिता की ओर देखने लगा। उस समय पिता विक्षिप्त-सा विह्वल दृष्टि से इधर-उधर देख रहा था। उसकी यह शोचनीय अवस्था देखकर लोग समवेदना तथा सांत्वना प्रगट करने की इच्छा से इस प्रकार कहने लगे—

इनका यह एकमात्र पुत्र था।

हाँ भाई, अभी गत वर्ष व्याह हुआ था।

हाय! हाय!

अब पिता फुक्का-फारकर रोने लगा। उसे अपनी विधवा पतोहू का स्मरण हो आया। इसी समय एक ने दूसरे से पूछा—

कोई बाल-बच्चा ?

कुछ नहीं।

पिता चिता के समीप भूमि में मस्तक पटककर रोता हुआ कह उठा—

हा, सर्वनाश हो गया, भाई !

लोगों ने उसे थाम लिया। पिता के मुख से लार बह रही थी। अजस्र अश्रु-प्रवाह के कारण वक्षस्थल भींग गया था। वहाँ उपस्थित लोगों में मृत युवक का एक सम्बन्धी युवक भी था। वही अब उसके पिता के दाय का अधिकारी था। उसने ऊपरी मन से समवेदना प्रगट करते हुए कहा—

यही तो दुःख है, भाई !

यह कहकर उसने रोने की मुद्रा बनाई; किन्तु आँसू न निकल सके। तुरन्त नेत्रों पर वस्त्र रख सिसकता हुआ वह दूसरे वृक्ष के नीचे जा बैठा, जहाँ कोई न था। इसपर लोगों ने कहा—

अब वृद्ध का यही एक सहारा रह गया है।

बेचारा कितना दुखी है ?

कर्म की गति है, भाई !

मृत युवक के एक पड़ोसी ने लम्बी साँस भरते हुए कहा। अनन्तर दूसरों ने कहा—

यह पढ़ा-लिखा विद्वान् था।

अपने वंश का मुख उज्वल करनेवाला था।

उनमें मृत युवक के सगोत्री भी उपस्थित थे। उन्होंने कहा—
कुछ पूर्वजन्म की कमाई भी होती है।
ऊँह, कौन जाने क्या होता है ?
इसपर गाँव के पण्डितजी बोल उठे—
होता वही है जो देख रहे हो, भाई !

अब पिता कुछ शान्त हो चला था। वह पण्डितजी के मुख की ओर शून्य नेत्रों से देखने लगा। सब लोग शान्त हो गए। यह स्मरण हो आने पर कि एक दिन सबकी गति इसी प्रकार होगी, सब लोग कुछ विरक्त हो प्रज्वलित चिता की ओर देखने लगे। अब पण्डितजी ने लोगों को सम्बोधितकर फिर कहना आरम्भ किया—

इस शरीर की अन्तिम दशा क्या देख रहे हो ? अब इसमें रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि आदि कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है। युवक का विद्युत् के समान तेजस्वी शरीर आज इस रूप में परिणत हो जायगा, क्या इसकी कल्पना उसने स्वप्न में भी की होगी ?

पण्डितजी की बातें सुनकर सब लोग सहम गए। इतने में अपनी भावना को छिपाने के निमित्त दूसरे वृक्ष के नीचे गया हुआ युवक भी लौट आया। उसने देखा कि दो चाण्डाल चिता को खोद-खोदकर जला रहे हैं। शव के किसी भाग के खुल जाने पर वे उसपर जलती लकड़ी रखकर ऊपर से ठोंक

देते हैं। ठोंकने पर चटचटाकर ऊपर उठती हुईं चिनगारियाँ भावनाओं की तरह विलीन हो जाती थीं। शरीर की झिल्ली जल जाने पर नीचे का श्वेत रंग दिखाई देने लगा, जिसपर ज्वाला हँसती हुई अठखेलियाँ कर रही थी। कुछ देर में भीतर से मट-मैले जल का शिथिल फुहारा छूट पड़ा और ज्वाला 'हू-हू' करती हुई उसे लेकर आकाश की ओर दौड़ पड़ी मानों चिता में नवीन जीवन आ गया हो। अब लोगों से अधिक न देखा गया और सबने मुख फेर लिया। दुर्गन्धि के कारण लोगों की नासिका सिकुड़ गई। उत्तराधिकारी युवक का भी मन घबड़ा उठा। उसे ऐसा ज्ञात होने लगा कि उसका हृदय बाहर निकल पड़ेगा और जीवन-लीला यहीं समाप्त हो जायगी। विकल होकर उसने मन में कहा कि उसे सम्पत्ति न चाहिए। इतने में चिता फिर जोर से चटचटाई। मालूम हुआ कि चाण्डाल ने खोपड़ी पर बाँस मारा है। इस भयानक व्यापार को देखकर युवक की आँखें बन्द हो गईं और उसने हाथों से मुख छिपा लिया। इसे देखकर लोगों ने कहा—

बेचारे को बड़ा कष्ट हो रहा है।

अपना ही रक्त ठहरा।

अब पण्डितजी ने पिता को थोड़ा स्थिर होता देख इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

मृत्यु से भय, छिः! मृत्यु है क्या? यहाँ आने से हम

क्यों डरते हैं ? यहाँ का मार्ग बचाकर क्यों निकल भागते हैं ? इसलिए कि यहाँ सब चीजों का अन्त हो जाता है; अर्थात् अपने अन्त से हमें भय लगता है। जब हम यह जानते हैं कि मृत्यु अवश्यंभावी है तो उससे भय कैसा ? मृत्यु से हमारी चिन्ताओं, दुःखों, निराशाओं आदि समस्त दुखद वृत्तियों का अन्त हो जाता है। अन्यथा चिन्ता, दुःख, निराशा, भयादि से भरा हुआ ही तो यह संसार है ?

मृत्यु के पश्चात् क्या होता है ?

उत्तराधिकारी युवक ने डबडबाई आँखों से पंडितजी की ओर देखते हुए पूछा। इसपर पण्डितजी ने मुसकराकर कहा—

इस जीवन के पश्चात् कर्मानुसार दूसरा जीवन प्राप्त होता है। अतः यह अत्यन्त उत्साह का विषय होना चाहिए। मृत्यु से इस शरीर का केवल नाश होता है। अनन्तर प्राणी नवीन रूप में, नवीन शक्ति को लेकर अवतीर्ण होता है।

मृत्यु है क्या ?

युवक ने जिज्ञासा-भाव से पूछा। लवण इन सब वातों को बड़े ध्यान से सुन रहा था। वह और समीप चला आया। पण्डितजी ने कहा—

जब प्राणी अपने संकल्पमय जगत् के बीच सदा के लिए निश्चेष्ट हो जाता है तो हम कहते हैं कि मृत्यु हो गई।

इसी समय ज्वाला की प्रचण्डता के कारण सहसा चिता

हिल उठी। इसे देख एक व्यक्ति चिल्ला उठा—

चिता खोद दो। शव करवट हो गया है।

अब चाण्डाल ने बाँस से मार-मारकर शव के अंग-प्रत्यंगों को तोड़ दिया, जिससे वह गठरी के रूप में हो गया। अनन्तर उसे जब बीच चिता में रख दिया गया तो 'साँय-साँय' करता क्षीण धुँआँ उत्कट गन्ध फैलाकर आकाश की ओर चल पड़ा। अब पिता बोल उठा—

आग और ठीक कर दो।

इसे सुनकर चाण्डाल अग्नि ठीक करने लगे। इसपर पण्डित-जी ने मुसकराकर कहा—

कुछ ही समय पहले तुम दाह-क्रिया से हिचक रहे थे। उस समय अधीर हो उठे थे। अब तुम स्वयं अग्नि रखवा रहे हो।

पिता अवाक् हो पण्डितजी के मुख की ओर देखने लगा। इसी समय एक कापालिक वहाँ आ पहुँचा। वह रक्तांबर पहने था। कण्ठ में रुद्राक्ष की माला थी और उसके बीच-बीच में हड्डियाँ पिरोई थीं। उसके एक हाथ में त्रिशूल और कमण्डल तथा दूसरे में मनुष्य की खोपड़ी थी। वह उस प्रज्वलित चिता को देखकर पहले मुसकराया। अनन्तर बड़ी भक्तिपूर्वक भगवान् का नाम लेकर चिता की भस्म को मस्तक में लगाया और चिता को नमस्कार किया। जब उधर से वह घूमा तो अपनी ओर लोगों को आश्चर्यमयी एवं भयाकुल दृष्टि से देखते हुए देखकर अट्टहास

कर उठा। उसके अट्टहास से श्मशान-भूमि काँप उठी। इतने में उसके पास चाण्डाल-कन्या दौड़ती हुई आकर बोली—

बाबा! बाबा!

कापालिक ने उसके सीमन्त में सिन्दूर देखकर हँसते हुए पूछा—

अरे, तेरा व्याह हो गया?

वह लज्जित हो गई। कापालिक ने उसे खप्पर थमाते हुए कहा—

बेटी, थोड़ा जल ले आ। थक गया हूँ।

कापालिक वहाँ एकत्र कोयलों की ढेर पर बैठ गया। चाण्डाल-कन्या दौड़कर जल ले आई। जल पीकर उसने फिर पूछा—

मैंने उसे नहीं देखा।

चाण्डाल-कन्या लज्जित दृष्टि से लवण की ओर देखने लगी। कापालिक लवण की ओर चुभती दृष्टि से देखकर मुस-कराया। इतने में चाण्डाल भी समीप आ पहुँचा और बोला—

बाबा, दोनों को आशीर्वाद दो।

आशीर्वाद.........

कापालिक लवण की ओर देखकर कुछ बड़बड़ाया। इसपर चाण्डाल ने विनीत स्वर में कहा—

हाँ, देवता।

अवश्य, यह चाण्डाल नहीं है।

यह कहकर कापालिक ने लवण की ओर से दृष्टि फेर ली और मुसकराते हुए चाण्डाल-कन्या से कहा—

बेटी, तू बड़ी भाग्यवती है।

चाण्डाल-कन्या वहाँ से भाग गई और झोपड़ी से एक शव-वस्त्र लाकर बोली—

यह लो।

ओह-हो !

कापालिक ने हँसते हुए कफन को फैलाकर देखा। अनंतर अपनी जटा पर लपेट लिया और कहा—

ब्याह का यही उपहार? वाह-वाह ! हा—हा—हा—हा—हा !

यह कहता हुआ प्रसन्नता से वह नाचने लगा। अनंतर स्थिर होकर पूछा—

ये उदास क्यों हैं ?

इनका युवा पुत्र मर गया है।

बस !

कापालिक की आश्चर्य-भरी दृष्टि श्मशान में घूमने लगी। उसकी दृष्टि से दीप्ति निकल रही थी। किसी का साहस न हुआ कि उससे आँख मिला सके। उसकी दृष्टि में समस्त संसार तुच्छ प्रतीत हो रहा था। उसने परिहास में कहा—

अरे मूर्खो, हँसो, हँसो, हँसो। देखो, कैसा सुन्दर हवन-कुण्ड प्रज्वलित है। ओह, कितना पवित्र है। उठो, उठो।

गाओ, गाओ। बेटी, तू भी गा, गा।

यह कहता हुआ कापालिक त्रिशूल उठाकर चिता की परिक्रमा करता-करता नाचने लगा। सबकी आँखें कापालिक की ओर घूमकर स्थिर हो गईं। चाण्डाल-कन्या बड़े उत्साह के साथ दो लकड़ियों को परस्पर बजाती हुई ताल देने लगी। कापालिक ने सबको अपनी ओर देखते देखकर कहा—

मायावियो, क्या देख रहे हो? ओह, तुम सब यहाँ दाह करने आए हो। तुम्हें तमाशा अच्छा लगता है। हा-हा-हा-हा-हा! मैं तमाशा हूँ। तुम लोग मेरा तमाशा देख रहे हो। मूर्खो, फिर भूतनाथ का यह खेल देखकर भागते क्यों हो?

यह कहता हुआ कापालिक क्रुद्ध हो त्रिशूल लिए सबकी ओर दौड़ पड़ा। इसे देख कितने ही जान लेकर भाग चले। जो बैठे रह गए, वे भी सहम गए। इसपर कापालिक हँसता हुआ बोला—

अज्ञानियो, मृत्यु के मन्दिर में आकर मृत्यु से इतना भय?

अनंतर उसने झपटकर खप्पर उठाया। प्रज्वलित चिता को नमस्कार करता, चाण्डाल-कन्या को आशीर्वाद देता, लवण की ओर देखकर मुसकराता और नाचता-कूदता हुआ वह दूसरी ओर चला गया। अब सब लोगों की जान में जान आई। पंडित-जी ने हँसते हुए कहा—

यह जीवन भी एक कल्पना है।

७

तुम्हें यहाँ अच्छा लगता है?

चाण्डाल-कन्या ने मुसकराते हुए प्रेम से पूछा। लवण ने भी मुसकराकर मधुर स्वर में कहा—

बहुत अच्छा।

सच?

हाँ।

लवण ने कान्तार पर ठिठकते हुए कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या ने चकित होकर पूछा—

रुक क्यों गए?

यहीं............

लवण गम्भीर हो गया। चाण्डाल-कन्या ने मुसकराते हुए कहा—

हाँ, यह वही स्थान है जहाँ मैंने तुम्हें पाया था।

लवण ने उस पुरातन पलास-वृक्ष को देखा जिसके नीचे कुछ दिन पूर्व वह व्याकुल बैठा अपने जीवन की घड़ियाँ गिन रहा

था। वह स्थान निर्जन था । नभ-मण्डल में उज्वल तोयद जहाँ-तहाँ फैले थे। वर्षा भूमि को हरित परिधान पहना चुकी थी। वायु में शीतलता थी। तरु-समूह वर्षा से धुलकर निर्मल हो गए थे। उनमें नवीन जीवन आ गया था। गड्ढों तथा नीची भूमि में वर्षा का एकत्र जल लहरा रहा था। लवण ने प्रकृति के इस परिवर्तित रूप को ध्यान से देखा। साथ ही, उसने अपने स्वरूप पर विचार किया कि वह भी उस दिन का लवण नहीं रह गया है। लवण के स्वरूप का परिवर्तन चाण्डाल-कन्या से जीवन-दान पाकर हुआ था और प्रकृति का मेघों द्वारा जीवन-दान पाकर। उसने उपकार का बदला आत्म-समर्पण द्वारा दिया था और प्रकृति ने बूँदों का आघात सहकर अपनी उपादेयता एवं अभिरम्यता के प्रसार द्वारा। इन अतीत स्मृतियों की मधुर संवेदना ने लवण को इतना तल्लीन बना दिया कि वह प्राकृतिक शोभा को देखता ही रह गया। इतने में चाण्डाल-कन्या बोल उठी—

क्या कुछ भूल गए?

हाँ, कुछ भूल-सा गया हूँ।

लवण ने पलास-वृक्ष के नीचे प्रसरित दूर्वा पर आसीन होते हुए कहा। चाण्डाल-कन्या उसके वाम पार्श्व में अधिष्ठित हो गई और बोली—

क्या भूल गए?

स्मरण नहीं आता।

लवण ने कुछ सोचते हुए अपनी स्मृति की असफलता पर उदास होकर कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या ने मुसकराकर पूछा—

तुम अपनी पूर्व-जीवनी क्यों नहीं बताते?

पूर्व-जीवनी!

लवण अपने चारों ओर फैली हरियाली की अभिरम्यता का अवलोकन करता हुआ बोला। इसपर चाण्डाल-कन्या ने उत्सुकता से कहा—

हाँ।

तुम उसे जानकर क्या करोगी?

लवण ने उदासीनता से कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या का मुँह लटक गया और उसने झुँझलाकर कहा—

कुछ नहीं।

चाण्डाल-कन्या के अवसादित मुख-मुद्रा को देखकर लवण को दया आ गई और उसने सस्नेह कहा—

दुखी हो गई?

दुखी क्यों होऊँगी?

चाण्डाल-कन्या के स्वर में विरक्ति थी। आकाश में शशि मेघों के टुकड़ों के प्रस्तर से कभी निकलता और कभी छिपता हुआ हँस रहा था। चन्द्र-मयूखों का नव किसलयों, कोमल अंकुरों तथा वारि-पटलों पर चारु प्रसार देखता हुआ लवण

बोल उठा—

तुम क्या जानना चाहती हो ? मेरा परिचय ?

चाण्डाल-कन्या दूसरी ओर देखने लगी। लवण ने मुसकरा-कर कहा—

अत्यन्त छोटा परिचय है।

चाण्डाल-कन्या अपने प्रश्न का सीधा उत्तर न पाने से मन-ही-मन क्षुब्ध हो रही थी। लवण ने हँसकर कहा—

मैं मनुष्य हूँ।

हूँ।

चाण्डाल-कन्या ने उदासीनता-सूचक हुँकारी मात्र भर दी। उसने उसका कोई प्रतिवाद न किया। इसपर लवण ने कहा—

यही परिचय तो मुख्य है।

चाण्डाल-कन्या चिढ़कर बोली—

मुख्य तो बहुत कुछ है।

हम तुम सब ब्रह्म के अंश हैं।

अंश क्यों ? मूर्ति।

चाण्डाल-कन्या ने व्यंग्य में कहा। लवण ने परिहास में कहा—

निःसन्देह।

ये सब बातें तो श्मशान में नित्य ही सुनती हूँ।

चाण्डाल कन्या रूठने की मुद्रा बनाती हुई बोली। इसपर

लवण ने मुसकराकर कहा—

श्मशान में सुना करती थीं, अब यहाँ भी सुनो।

कारण ?

देश, काल एवं पात्र के अनुसार एक ही वस्तु में वैचित्र्य, भिन्नता एवं विरोध प्रतीत होता है।

चाण्डाल-कन्या ने अपने जीवन में कभी तर्क नहीं किया था। लोगों से जो बातें सुनती, समय पड़ने पर उन्हें दुहरा देती थी। लवण श्मशान में रहकर इतना शीघ्र तार्किक बन जायगा, इसकी कल्पना तक उसने न की थी। जब लवण मुसकराकर उत्तर देता तो उसे थोड़ा क्रोध आ जाता, जिसपर लवण हँस देता था। जब वह खिझला उठती तो लवण उसे मनाता था। अब लवण ने यह लक्ष्य किया कि उसके मन में संशय है। अतः उसे दूर करने के लिए उसने कहना आरम्भ किया—

देखो, नाना वस्तुओं में सामंजस्य किंवा सम्बन्ध कैसे स्थापित होता है ? जल जलमें, अग्नि अग्नि में, वायु वायु में, तेज तेज में, परिमाणु परिमाणु में मिल जाता है। इसी प्रकार मनुष्य मनुष्य से मिल जाता है। अतः मैं तुमसे मिल जाऊँगा।

लवण के इस प्रेम-वाक्य को सुनकर वह लज्जित हो गई। उसका गुंठित हृदय प्रफुल्लित हो जाने से उसे रोमांच हो आया। अब लवण ने स्नेह-पूर्वक उसके कण्ठ में अपने बाहु को डालकर

कहा—

उस दिन श्मशान में जाकर मैंने जाना कि विभिन्न पदार्थों के मेल से शरीर बनता है। जब वे पदार्थ अलग हो जाते हैं तो शरीर समाप्त हो जाता है। अतः मनुष्य की शरीर-रचना द्वारा हमें विभिन्नता में एकता और एकता में विभिन्नता का बोध होता है।

चाण्डाल-कन्या लवण के बाहु-पाश से बँधी हुई उसकी बातों को सुनने में तन्मय थी। इसे देख लवण ने फिर कहा—

दृश्य जगत् का ज्ञान देखनेवालों के मन में ही रहता है। अपने संकल्प में ही कल्पना रहती है। अतः इस दृश्य जगत् का उदयस्थल अपना हृदय हुआ करता है।

चाण्डाल-कन्या ने आनन्द-विभोर होकर लवण के कंधे पर अपना मस्तक टेक दिया। लवण ने अपने दूसरे हाथ से उसके केश को सँवारते हुए कहा—

यदि हमें मनुष्यों के दृश्य जगत् का ज्ञान नहीं होता तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका अस्तित्व ही नहीं है। विश्व के समस्त पदार्थ अपना अस्तित्व रखते हैं। हम उनका अनुभव कर सकते हैं, क्योंकि समस्त जगत् का उद्गम और लय ब्रह्म में है। संपूर्ण जगत् ब्रह्ममय है। हम जो कुछ देखते हैं सब-में ब्रह्म पूर्णरूप में वर्तमान है।

क्या मुझमें भी है?

चाण्डाल-कन्या की पलकें खुल गईं और उसने मुसकराते हुए पूछा। इसपर लवण ने कहा—

हाँ, तुम में भी है और हम में भी है। तभी तो हम लोग मिल सके।

फिर हम चाण्डाल और दूसरे ब्राह्मण कैसे ?

चाण्डाल-कन्या ने स्थिर होकर पूछा। इसपर लवण ने गम्भीर होकर उत्तर दिया—

इसका कारण है। वह यह कि हम अपनी वासनाओं द्वारा विशेष स्थिति एवं दशा में स्थित हो गए हैं। हम अपने संकल्पों के जाल में फँसकर यह भूल गए कि यह संसार क्या है ? हम क्या हैं ? हमारा नियन्ता तथा संहारक कौन है ?

यह कहते हुए लवण ने अपनी बाहु को चाण्डाल-कन्या के कण्ठ से हटा लिया और उसके दोनों हाथ मिल गए। वह किसी गंभीर चिंता में मग्न दिखाई देने लगा। अब चाण्डाल-कन्या ने गम्भीरता से पूछा—

हम वन्धन को छिन्न-भिन्न क्यों नहीं कर देते ?

यह बन्धन स्वर्ण-शृंखला है, स्वर्ण-हार है। स्वर्ण आहार बनकर क्षुधा को शान्त नहीं कर सकता। उससे हमारा कुछ प्रत्यक्ष उपकार नहीं होता। फिर भी हम स्वर्ण के आभूषणों द्वारा शरीर को वेष्टित किए रहते हैं। स्वर्ण के नाना प्रकार के आभूषणों को धारण करने की हमारी इच्छा सदैव बलवती

रहती है। यद्यपि उसे पहनने से निर्मल शरीर में काले दाग एवं घट्ठे पड़ जाते हैं तथापि हम उन्हें अपनी वासना में फँसकर बड़ी प्रसन्नता से पहने फिरते हैं।

वासना क्या है ?

चाण्डाल-कन्या ने बड़ी उत्सुकता के साथ लवण की ओर देखते हुए पूछा। लवण ने थोड़ा झूमते हुए कहा—

जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु की प्राप्ति के निमित्त दृढ़ भावना से भावित हो जाता है तो वही भावना वासना कहलाती है। जैसे, वह मेरी वासना थी जिसने मुझे इस वृक्ष के नीचे जल-ग्रहण करने के लिए बाध्य किया। वह मेरे जीवित रहने की घोर इच्छा थी, जिसने मुझे आज इस रूप में पहुँचा दिया।

चाण्डाल-कन्या को लवण की इस बात से आघात-सा पहुँचा, जिससे उसका प्रसन्न मुख उदास हो गया। उसमें जिज्ञासा का भाव दिखाई देने लगा और मानसिक वेदना के लक्षण लक्षित होने लगे।

लवण इसे भाँप गया और उसे अपने अत्यन्त समीप खींचता हुआ बोला—

प्रिये, तुम्हें खेद न करना चाहिए। सत्य व्यवधान द्वारा प्रच्छन्न नहीं किया जा सकता। जो बात कभी अज्ञानवश अथवा बाध्य होकर की जाती है, संयोगवश उसका फल कभी

अच्छा भी होता है।

चाण्डाल-कन्या ने खिन्नता से कहा—

मेरे मन में यह बात कभी-कभी उठती है कि मैंने तुम्हारी स्थिति से उस समय अनुचित लाभ उठाया।

ओह, तुम यह क्या कहती हो ? क्या काले पुष्पों में सुगन्धि और सौन्दर्य नहीं होता ? शरीर काला होने से मन कलुषित, हृदय मलिन एवं आत्मा दूषित नहीं होती। यह तो ऊपरी चमड़े का रंग है। देखो, शीत-प्रधान देशों में रहनेवालों का चमड़ा श्वेत और उष्ण-प्रधान देशों में रहनेवालों का कृष्ण होता है। यह भेद नित्य नहीं है। इसका कारण देश तथा परिस्थिति का प्रभाव है। पंचनद-प्रान्त का गोधूम बंग-प्रदेश में बोने से वैसी उपज न दे सकेगा और बंग-प्रदेश का तण्डुल पंचनद में बोने पर वैसा फल न देगा। शरीर जल जाने पर काला, कुष्ठ हो जाने पर श्वेत, सर्प के डस लेने पर स्याह एवं मृत्यु के पश्चात् पीत हो जाता है। रंगों का यह भेद देश, काल तथा परिस्थिति का अन्तर है। किन्तु इससे अपनी आत्मा, बुद्धि, मन आदि में परिवर्तन नहीं होता। देश, काल, क्रिया, और द्रव्य द्वारा शरीर की रचना होती है। इसी कारण शीत देश के निवासी गौर वर्ण के व्यक्ति जब उष्ण-प्रधान देश में बस जाते हैं तो बहुत दिनों के बाद उनके वंशजों का रंग श्यामल हो जाता है। जिस प्रकार सामाजिक जाति-भेद मनुष्य-निर्मित हैं उसी प्रकार मनुष्यों के

रहन-सहन, रूप-रंग आदि के भेद देश-काल निर्मित हुआ करते हैं। ये नित्य नहीं हुआ करते ; किन्तु प्रकृति के खेल हैं।

चाण्डाल-कन्या इन बातों को बड़े ध्यान से सुन रही थी। अनन्तर उसने मुसकराते हुए पूछा—

जाति बदली जा सकती है। मनुष्य ब्राह्मण से चाण्डाल हो सकता है; किन्तु गोरा शरीर छीलकर काला नहीं किया जा सकता।

जाति कृत्रिम हुआ करती है। मनुष्य के कार्य-काल की अवधि उसके मृत्यु पर्यन्त होती है। अतएव मनुष्य का जीवन-बन्धन मृत्यु के परे नहीं हो सकता। किन्तु प्रकृति का बन्धन इतना सीमित नहीं है। वह जीव के उत्पन्न होने से पहले आरम्भ होता है और मृत्यु के पश्चात् तक चलकर फिर समाप्त होता है। तब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में रह जाती है और वह प्रकृति से परे हो जाती है। जब वह प्रकृति से पुनः संयोग स्थापित करना चाहती है तो उसे उसके नियमों से बँधना पड़ता है। प्रकृति अपने इच्छानुसार उसके आवरण का रूप-रंग स्थिर करती है। अतः जब तक प्रकृति का आधिपत्य इस शरीर पर रहता है तब तक उसके रूप-रंग में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

क्यों ?

आत्मा ब्रह्म-स्वरूप एवं नित्य है। यह तेज-स्वरूप एवं सत्ता-

त्मक है। यह वह सत्ता है जिसको मनुष्य की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय अवस्थाओं में अभाव नहीं रहता। इस जड़ शरीर से उसका कोई तादात्म्य नहीं है। दोनों पृथक्-पृथक् रहते हैं।

इसी समय पलास पर बैठी सारिका बोलने लगी। कोकिल ने उसका उत्तर दिया। चाण्डाल-कन्या का हृदय उनके नैसर्गिक संगीत द्वारा आकर्षित होकर आज उनकी हत्या की कल्पना तक न कर सका। उनकी मधुर स्वर-लहरियाँ प्रशान्त वायु में, शशि-मयूख स्थानीय निस्तब्धता में एवं प्रकृति अपनी अभिरम्यता में लीन होकर उसके मानस की कोमल उर्मियों को उद्वेलित करने लगी। वह मुग्ध होकर लवण के अंक में लेट गई। उसकी पलकें ढकने लगीं। उसका हृदय आज प्रेम, दया, सम-वेदना आदि मनुष्योचित पवित्र भावनाओं का केन्द्रस्थल दिखाई दिया। थोड़ी देर में लवण के मधुर स्पर्श से उसकी आँखें उन्मीलित हुई और वह प्रकृति के सुहावने रूप को अनिमेष देखने लगी। कुछ काल तक लवण के अंक मे पड़ी-पड़ी प्रकृति का माधुर्य-पान करती हुई वह पुनः उठकर कान्तार पर आई। आज उसे अपने जीवन में पहले-ही-पहल दूसरे प्रकार की अनुभूति हो रही थी। उसके नेत्रों की ज्योति सरल हो गई थी। आज उसे वहाँ के पथ, वहाँ के तरु-समूह, वहाँ का नभ-मंडल, वहाँ के पशु-पक्षी आदि सभी प्रीति-दान देते दिखाई दिए। शशि अपने मयूखों द्वारा स्निग्धता का प्रसार कर रहा था। विहं-

उसे देखते ही 'माँ-माँ' पुकारता हुआ लिपट गया। चाण्डाल-कन्या प्रेमपूर्वक उसके मस्तक पर हाथ फेरती हुई बोली—

क्या है, बेटा!

बालक माँ के हाथ का भोजन-पात्र सतृष्ण आँखों से देखने लगा। इसपर माँ ने पूछा—

भूख लगी है?

थोड़ा रसा पिला दो।

लवण ने हाथ के कण्डोल को अलग रखते हुए कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या ने मिट्टी के भोजन-पात्र को थोड़ा ऊपर उठाते हुए कहा—

कलेवा कर लो।

कर लूँगा।

बालक माँ के हाथ से पात्र छीन लेने के लिए व्याकुल हो उठा। इसपर माँ ने कहा—

गिर जायगा।

मैंने कहा न कि इसे पिला दो।

लवण ने उठते हुए कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या बोली—

क्या वह कुल पी जायगा?

ऊँह!

लवण उठकर हाथी के सूखे माँस पर बैठ गया। बालक भी आकर उसके अंक में बैठ गया। चाण्डाल-कन्या ने भोजन-पात्र

त्मक है। यह वह सत्ता है जिसका मनुष्य की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय अवस्थाओं में अभाव नहीं रहता। इस जड़ शरीर से उसका कोई तादात्म्य नहीं है। दोनों पृथक्-पृथक् रहते हैं।

इसी समय पलास पर बैठी सारिका बोलने लगी। कोकिल ने उसका उत्तर दिया। चाण्डाल-कन्या का हृदय उनके नैसर्गिक संगीत द्वारा आकर्षित होकर आज उनकी हत्या की कल्पना तक न कर सका। उनकी मधुर स्वर-लहरियाँ प्रशान्त वायु में, शशि-मयूख स्थानीय निस्तब्धता में एवं प्रकृति अपनी अभिरम्यता में लीन होकर उसके मानस की कोमल उर्मियों को उद्वेलित करने लगी। वह मुग्ध होकर लवण के अंक में लेट गई। उसकी पलकें ढकने लगीं। उसका हृदय आज प्रेम, दया, सम-वेदना आदि मनुष्योचित पवित्र भावनाओं का केन्द्रस्थल दिखाई दिया। थोड़ी देर में लवण के मधुर स्पर्श से उसकी आँखें उन्मी-लित हुईं और वह प्रकृति के सुहावने रूप को अनिमेष देखने लगी। कुछ काल तक लवण के अंक में पड़ी-पड़ी प्रकृति का माधुर्य-पान करती हुई वह पुनः उठकर कान्तार पर आई। आज उसे अपने जीवन में पहले-ही-पहल दूसरे प्रकार की अनुभूति हो रही थी। उसके नेत्रों की ज्योति सरल हो गई थी। आज उसे वहाँ के पथ, वहाँ के तरु-समूह, वहाँ का नभ-मंडल, वहाँ के पशु-पक्षी आदि सभी प्रीति-दान देते दिखाई दिए। शशि अपने मयूखों द्वारा स्निग्धता का प्रसार कर रहा था। विहं-

उसे देखते ही 'माँ-माँ' पुकारता हुआ लिपट गया। चाण्डाल-कन्या प्रेमपूर्वक उसके मस्तक पर हाथ फेरती हुई बोली—

क्या है, बेटा !

बालक माँ के हाथ का भोजन-पात्र सतृष्ण आँखों से देखने लगा। इसपर माँ ने पूछा—

भूख लगी है ?

थोड़ा रसा पिला दो।

लवण ने हाथ के कण्डोल को अलग रखते हुए कहा। इस-पर चाण्डाल-कन्या ने मिट्टी के भोजन-पात्र को थोड़ा ऊपर उठाते हुए कहा—

कलेवा कर लो।

कर लूँगा।

बालक माँ के हाथ से पात्र छीन लेने के लिए व्याकुल हो उठा। इसपर माँ ने कहा—

गिर जायगा।

मैंने कहा न कि इसे पिला दो।

लवण ने उठते हुए कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या बोली—

क्या वह कुल पी जायगा ?

ऊँह !

लवण उठकर हाथी के सूखे माँस पर बैठ गया। बालक भी आकर उसके अंक में बैठ गया। चाण्डाल-कन्या ने, भोजन-पात्र

लवण के सम्मुख रख दिया। लवण ने उसे बालक के मुख में लगाते हुए कहा—

पीओ।

बालक थोड़ा रसा पीकर सन्तोष से अपना ओंठ चाटता हुआ बोला—

बस।

और पी लो।

बालक पिता के अंक से कूदकर माँ से लिपट गया। लवण ने माँस खाते हुए कहा—

इसे लेती जाओ।

रहने न दो!

बच्चे का मुख चूमती हुई चाण्डाल-कन्या ने उत्तर दिया। लवण माँस की बोटी के भीतर से निकली हुई हड्डी को बाहर फेंकता हुआ बोला—

चोट लग जायगी।

देखते रहना।

चाण्डाल-कन्या यह कहती हुई वहीं बैठकर लड़के का बाल ठीक करने लगी। लड़के ने माँ की गोद से उछलकर पिता की गोद में जाना चाहा। चाण्डाल-कन्या उसे माँस की एक बोटी थमाती हुई बोली—

बैठो न!

चाण्डाल का मुख विकसित हो गया। बालक हथेली पीट-पीटकर नाचने लगा। बालक के प्रसन्नता प्रगट करने के ढंग को देखकर लवण मुसकरा उठा। इतने में चाण्डाल ने प्रसन्नता से कहा—

लवण, चिता लगवा दो। भगवान् बड़ा उपकारी है।

यह कहता हुआ चाण्डाल आकाश की ओर देखने लगा। शव श्मशान में आ गया था। लवण ने कहा—

चिन्ता न कीजिए। मैं सब ठीक किए देता हूँ।

शव को एक ओर रखकर उनमें से एक व्यक्ति ने लवण के समीप आकर पूछा—

चिता कहाँ लगेगी ?

महाराज, सब स्थान खाली है। क्या जल के समीप लगवा दूँ ?

जैसा ठीक समझो।

इतने में दूसरा व्यक्ति भी वहाँ आ पहुँचा। उससे लवण ने पूछा—

महाराज, किसका शव है ?

ब्राह्मण का।

कौन मरा है ?

गाँव के पुरोहित का पुत्र।

अच्छा !

लवण ने यह कहते हुए कृत्रिम आश्चर्य-मुद्रा बनाई। अनन्तर उनमें से एक ने कहा—

अभी युवा था।

हाय—हाय !

लवण ने दिखावटी समवेदना प्रगट करते हुए कहा। अनंतर शव के साथ आई हुई ब्राह्मण-मण्डली पीपल की छाया में सुपास देखकर बैठ गई। लवण चिता का प्रबन्ध करने लगा। बालक अपने समीप उड़ती हुई तितलियों को दौड़-दौड़कर पकड़ने में संलग्न था। इतने में वह ब्राह्मण-मंडली के समीप जा पहुँचा। देखते-देखते एक तितली वहाँ बैठे हुए व्यक्तियों के ऊपर उड़ने लगी, जिसे पकड़ने के लिए वह बिना हिचकिचाए मण्डली में घुस पड़ा। उसका स्पर्श होते ही समस्त मण्डली आन्दोलित हो उठी। सब लोग घबड़ाकर उठ खड़े हो गए और चिल्ला उठे—

दत्-दत्। भाग-भाग। चाण्डाल, भाग।

उनमें से एक वृद्ध महाशय अधीर होकर बोल उठे—

स्पर्श कर दिया, हे भगवन् !

इतने में उस मण्डली में उपस्थित युवक बड़ी-बड़ी आँखें निकाले 'मारो-मारो' कहते हुए ललकारने लगे। किन्तु स्पर्श के भय से कोई उस बालक पर हाथ न लगा सका। बालक चकपकाकर स्थिर हो गया। वह भय से काँप रहा था। अनंतर अपने समीप किसी को न आता देखकर वह अपने नाना की ओर भाग चला। अब मार्ग में पड़नेवाले ब्राह्मण घबड़ाकर अगल-बगल में हटने लगे। अनंतर सबने मिलकर चाण्डाल को फटकारना आरंभ किया—

तू उसका पात्र नहीं।

यह तो ठीक है। महाराज, फिर भी मेरी शंका निवृत्त होनी चाहिए। वह यह कि चेतन रहने पर शरीर किस प्रकार अपवित्र रहता है ?

चाण्डाल, तेरे मुख से इस प्रकार की बातें शोभा नहीं देतीं।

अच्छा महाराज, अग्नि लीजिए।

लवण ने मुसकराते हुए कहा और बालक को पुकारा —

बेटा, सरपत पर अग्नि ले आओ।

बालक पहले से ही डरा था। कहीं पिता भी आज्ञा न मानने पर ठोंक न दे, इसलिए सरपत पर नाना से अग्नि ले डरता हुआ समीप जा पहुँचा। लवण ने ब्राह्मणों को अग्नि लेने का संकेत किया। किन्तु उन्हें उसके हाथ से अग्नि लेने में संकोच हो रहा था। इसपर लवण ने नम्रता से कहा—

महाराज, अग्नि ग्रहण कीजिए। पुत्र के शव के समीप किसी के पुत्र से अग्नि लेने में हिचक न होनी चाहिए।

लवण का इस प्रकार तुरन्त बदला फिरता देख सब लोग अवाक् रह गए। जिस बालक के स्पर्श के कारण इतना बड़ा काण्ड हो गया उसी के हाथ से अग्नि लेना सबको अपमानकर प्रतीत होने लगा। लोगों की इस हिचक को देखकर लवण बोला—

आपका पुत्र अविवाहित था। वह पवित्र और संसार के छल-कपट से दूर था। मैं अपने अपवित्र हाथों से अग्नि देकर उसे अपवित्र

नहीं करना चाहता। शास्त्रों ने अबोध बालक को पवित्र बताया है और उसमें भगवान् का वास कहा गया है। अतः इसके हाथ से अग्नि-ग्रहण करने में आपको संकोच न होना चाहिए।

पुत्र की चिता के पास खड़ा उसका पिता यों ही शोक से विचलित था, दूसरे लवण की बातों ने उसके हृदय पर वज्राघात का काम किया। उसे क्रोध आ गया; किन्तु उसे दबाते हुए उसने सबकी ओर देखा। इस समय एक विकट समस्या उपस्थित थी। अतः सब एक दूसरे का रुख बचा रहे थे। अनंतर पिता ने कहा—

चाण्डाल, आज तुमने ठीक नहीं किया।

महाराज, क्षमा कीजिए। शास्त्रों ने मुझे यहाँ का राजा बनाया है। मेरे आदेश के अनुसार यहाँ सबको चलना पड़ता है। जीवन के इस अन्तिम काल में मेरी आज्ञा इसलिए चलती है कि जिस प्रकार अपनी अन्तिम अवस्था में मनुष्य अत्यन्त दया का पात्र हो जाता है उसी प्रकार हम भी समाज की अत्यन्त दया के पात्र हैं।

यह कहता हुआ लवण अपने पुत्र के मस्तक पर हाथ फेरने लगा। पिता के प्रेम को देखकर बालक स्थिर हो गया। इसी समय हवा के लगने से सरपत जल उठी। इसपर लवण ने कहा—

महाराज, सबको अपना पुत्र प्रिय होता है।

ब्राह्मण ने देखा कि सब लोग चुप हैं। अतः विलम्ब होता देख उसने अधीरता से कहा—

# ६

लवण ! लवण !

प्रतीहारी ने झोपड़ी के द्वार पर पुकारा । इसपर भीतर से आवाज आई—

जी, हाँ । क्या है ?

श्मशान चलना है ।

क्यों ?

एक राज-अपराधी आया है ।

यह कहकर प्रतीहारी झोपड़ी के बाहर घूमने लगा । लवण भीतर मांस बना रहा था । उसने मांस की बोटी काटते हुए पूछा—

अंग-भंग होगा अथवा वध ?

वध ।

प्रतीहारी ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया । लवण के मांस काटने की ध्वनि बाहर तक आ रही थी । प्रतीहारी दुर्गन्धपूर्ण

स्थान होने कारण झोपड़ी से दूर टहलने लगा। लवण का श्वशुर बाहर जामुन के नीचे बैठा नध्री बना रहा था। लवण बाहर आया। उसके श्वशुर ने पूछा—

खड्ग लिया है ?

ले लेता हूँ।

लवण झोपड़ी के भीतर से खड्ग लेकर बाहर आया। उसके श्वशुर ने फिर पूछा—

शाण है ?

लवण ने मेखला से खड्ग निकालकर दाहिने हाथ के अँगूठे को धार पर दौड़ाते हुए कहा—

हाँ, है।

चलो जी !

प्रतीहारी ने विलंब होता देख आदेश देते हुए कहा। अनंतर श्वशुर ने लवण से कहा—

जाओ, एक ही आघात में मस्तक छिन्न कर देना। विलम्ब करने से अपराधी तथा देखनेवाले दोनों को कष्ट होता है।

हूँ !

लवण ने गम्भीरतापूर्वक हुँकारी भरी। उसका पुत्र वहीं नाना के साथ चमड़ा छील रहा था। उसने लवण को श्मशान जाते देखकर कहा—

मैं भी चलूँगा।

हाँ, जा। सब काम सीख लेना अच्छा है। हिम्मत खुल जायगी।

चल।

लवण उपेक्षापूर्वक कहकर चलना ही चाहता था कि चाण्डाल ने कहा—

अरे, मद लिया?

लवण ठिठक गया। श्वशुर ने चिल्लाकर कहा—

एक भाण्ड में मद दे जा, बेटी!

मद क्या होगा?

उसे पीकर हत्या करना।

क्यों?

यह बात वहीं समझ में आ जायगी।

श्वशुर ने मुसकराते हुए कहा। लवण ने अपने ऊपर विश्वास प्रकट करते हुए कहा—

बिना मद-पान किए ही मैं हत्या कर सकता हूँ।

मद पास में रहने से विशेष विश्वास रहता है। अपनी तो वही शक्ति है।

इतने में चाण्डाल-कन्या भाण्ड में मद लेकर आई। लवण ने उसे ले लिया। एक हाथ में खड्ग और दूसरे में मद लिए हुए वह साक्षात् यमदूत-सा श्मशान की ओर चल पड़ा। उसके इस भयंकर रूप को देखकर तरुओं पर बैठे पक्षी उड़ने लगे।

चरते हुए पशु मार्ग छोड़कर भाग चले। कुत्ते साथ लग गए। प्रतीहारी इसे देखकर संकुचित हो गया। अनंतर लवण ने प्रतीहारी से पूछा—

कौन है ?

वणिक्।

क्या किया है ?

हत्या।

किसकी ?

अपनी स्त्री की।

क्यों ?

वणिक् कुचाली था। स्त्री ने मना किया। दोनों में तकरार हुई और बस··· ·········

प्रतीहारी ने बिना किसी प्रकार की हिचक के कहा। उसके लिए जैसे यह साधारण बात थी। लवण ने पुनः पूछा—

बस, इतने ही पर ?

हाँ।

राजा ने उसे वध की आज्ञा दे दी ?

लवण विचारमग्न होकर नीचा मस्तक किए चलने लगा। अनंतर प्रतीहारी ने कहा—

हाँ, यही न्याय है।

मैं भी तो वध करूँगा।

तब ?

मुझे भी हत्या करने का दण्ड मिलेगा।

इसपर प्रतीहारी ने हँसते हुए कहा—

आज तुम पागल हो गए हो।

कैसे ?

और क्या नहीं ?

नहीं, मैं तुम्हें देख रहा हूँ एवं दुनिया को देख रहा हूँ।

तुम थोड़ा मद पी लो।

क्यों ?

तुम असंयत प्रतीत होते हो। उसे पी लेने से तुम्हें दया न आएगी और सुगमता से वध कर सकोगे।

दया !

हाँ, बहुत से चाण्डालों को वध करने के समय दया आ जाती है, जिससे वे हिचकने लगते हैं।

ओह !

लवण विचारमग्न हो उठा। इसे देखकर प्रतीहारी ने कहा—

तुम नये प्रतीत होते हो।

हाँ।

चाण्डाल हो ?

प्रतीहारी ने उसके रूप का ध्यानपूर्वक देखते हुए पूछा। इसपर लवण ने कहा—

मैं चाण्डाल-राज का जामातृ हूँ।

अच्छा!

प्रतीहारी ने आश्चर्य के साथ कहा। लवण शीघ्रता से चलने लगा। अनन्तर प्रतीहारी ने पूछा—

तुम कहाँ के रहनेवाले हो ?

लवण कुछ स्मरण करता हुआ उदास होकर बोला—

मुझे याद नहीं आता।

अरे, तुम्हें अपना घर नहीं याद आता।

हाँ, भूल गया हूँ।

आश्चर्य है।

इसमें आश्चर्य क्या? जब मनुष्य मनुष्य होता हुआ भी अपनी मनुष्यता भूल जाता है तब मुझे तो घर छोड़े बहुत दिन बीत गए।

तुम विचित्र हो।

अपना शरीर भी तो विचित्र है।

यह कहते हुए लवण की मुद्रा दार्शनिक सरीखी हो गई। अनंतर प्रतीहारी ने पूछा—

तुमने पहले कभी वध किया है?

नहीं।

तब तुम यह काम क्या अच्छी तरह कर सकोगे?

हाँ, मैंने वध होते बहुत देखा है। यहाँ वध होता भी तो

बहुत कम है। यदि मेरे श्वशुर का स्वास्थ्य अच्छा होता तो वही आते। किन्तु तुम यह पूछते क्यों हो ?

इसलिए कि यदि उस समय कहीं भयभीत हो गए तो क्या होगा ?

डरूँगा क्यों ?

यदि तुम्हें दया आ गई, जिससे काँप गए और ठीक प्रकार से वध न कर सके।

तब न मारूँगा।

किन्तु तुम्हें तो मारना ही होगा।

प्रतिहारी ने दृढ़तापूर्वक कहा। इसपर लवण ने परिहास में कहा—

नहीं, मैं तो उसे छोड़ दूँगा।

तुम्हें छोड़ने का अधिकार नहीं है।

और मारने का है ?

हाँ।

यह किसने कहा है ?

लवण ने आश्चर्य-प्रदर्शित करते हुए पूछा। इसपर प्रतीहारी ने अधिकारपूर्ण स्वर में कहा—

यही राज्य-नियम है।

ऐसा अनुचित राज्य-नियम मैं नहीं मानता।

मूर्ख, राज्य-नियम की अवहेलना करता है ?

यदि मूर्ख अवहेलना न करेगा तो क्या विद्वान् करेगा ?

लवण ने स्थिर रूप से तुरन्त उत्तर दिया। इसपर प्रतीहारी ने दृढ़ता के साथ कहा—

तुम्हें तो राज्यादेश मानना ही पड़ेगा, अन्यथा दण्ड मिलेगा।

कौन दण्ड देगा ?

राजा।

किस लिए ?

इसलिए कि तुमने वध नहीं किया।

किन्तु वध का दण्ड तो वध होता है।

राज्य-नियम में आततायियों का वध करना दण्डनीय नहीं होता।

यह एक विचित्र विधान है।

आज तुम्हें हो क्या गया है ?

प्रतीहारी ने किंचित् व्याकुलता दिखाते हुए पूछा। इसपर लवण ने सरलतापूर्वक उत्तर दिया—

कुछ नहीं।

रुपया मिलेगा।

यह तो जानता हूँ।

तब ?

रुपये के लिए वध ?

तुम्हारा यह कर्म है।

कर्म !

हाँ, तुम सनातन से इसे करते आए हो।

इसलिए अब भी करूँ ?

नहीं तो क्या ? सनातन-परम्परा तोड़ोगे ?

यदि तोड़ दूँ ?

तब तुम स्वयं टूट जाओगे।

कैसे ?

तुम अपनी इसी कमाई द्वारा समाज से द्रव्य, वस्त्रादि पाते हो।

यदि मैं यह कर्म त्याग दूँ ?

दण्ड मिलेगा।

कौन दण्ड देगा ?

समाज।

और ?

राजा।

क्यों ?

इसलिए कि तुम समाज की व्यवस्था और राजा के नियमों का अतिक्रमण करोगे।

किन्तु मैं भी तो समाज का अंग हूँ ?

अवश्य।

तब समाज अपने ही अंग को दण्ड देकर उसका नाश क्यों करेगा ?

प्रतीहारी एक सैनिक था। उसे विशेष तर्क न आता था। अतः लवण के प्रश्नों से वह घबड़ा-सा गया। किन्तु उसने विचारा कि एक चाण्डाल से परास्त होना लज्जाजनक होगा। अतएव उसने अपनी बात को सँभालते हुए कहा—

राजा दण्ड देगा।

मैं भी राज्य का अंग हूँ।

राज्य का अंग तो सब कुछ है।

तब राज्य मेरा वधकर अपने सब कुछ का नाश क्यों करेगा?

हे भगवन्, तुमने तो विवाद करना आरम्भ कर दिया!।

लवण अपनी बातों की धुन में था। अतः उसने गम्भीरता-पूर्वक पूछा—

राजा तो प्रजारंजन के निमित्त होता है ?

हाँ।

तब प्रजा की हत्या क्यों कराता है ?

प्रजा की रक्षा के हेतु।

वणिक् की हत्या से प्रजा की क्या रक्षा होगी ?

दूसरे व्यक्ति वैसा न करेंगे।

आपके कहने का तात्पर्य सम्भवतः यह है कि वणिक् के वध से लोग डरकर कुकर्म न करेंगे ?

हाँ, अब तुम्हारी स्थूल बुद्धि में बात आई।

किन्तु वध करने पर भी यदि उसका पता समाज को न चले और बात दब जाय तो लोग क्यों डरेंगे ?

इतना सूक्ष्म विचार नहीं किया जा सकता।

विचार नहीं किया जाता इसी लिए सब कुछ होता है। स्त्री मर गई, अब पति मरेगा और बाद में उसके बाल-बच्चे असंरक्षित दशा में तड़पते फिरेंगे। उनके भूखों मरने और बिगड़ने का अपराध किसे होगा ?

हत्यारे को।

क्यों ?

वह अपनी स्त्री की न हत्या करता और न यह अवस्था होती।

किन्तु अबोध शिशुओं ने तो कुछ नहीं बिगड़ा है। वे क्यों दुःख भोगेंगे ?

इसलिए कि पापी के घर जन्म पाया है।

फिर तो भगवान् भी अपराधी हैं ?

भगवान् !

लवण की इस प्रगल्भता पर प्रतीहारी चकित हो गया। इसपर लवण ने स्थिर होकर कहा—

हाँ।

कैसे ?

प्रतीहारी ने चिढ़कर पूछा, जिससे उसके मस्तक में बल पड़ गए। अनंतर लवण ने कहा—

उसने पापी को सन्तान क्यों दी ?

पूर्वजन्म के कर्मानुसार उन्हें पापी के यहाँ जन्म मिला होगा।

यदि भगवान् को उनके कर्मों का प्रायश्चित्त ही कराना स्वीकार था तो किसी पुण्यात्मा के घर जन्म देते। वहाँ उनका जीवन सुधर जाता। एक पापी के यहाँ उन्हें उत्पन्नकर भगवान् ने और भी पाप के वन में डाल दिया। यह तो भगवान् का बड़ा अन्याय है।

चाण्डाल होकर भगवान् पर आक्षेप करते हो ?

मैं चाण्डाल अवश्य हूँ। किन्तु भगवान् की कृति नष्ट करने के पूर्व उनसे कुछ पूछ लेना चाहिए।

भगवान् की कृति कैसी ?

भगवान् ने ही मनुष्य को बनाया है। किसी राजा अथवा समाज ने तो उसे बनाया नहीं है ?

तुमने आज विशेष मद-सेवन तो नहीं किया है ?

अभी मद तो हाथ में है।

लवण ने अपने हाथ के मद-पात्र को दिखाते हुए कहा। इस-पर प्रतीहारी ने कहा—

थोड़ा मद पी लो।

क्यों ?

तुम्हारा मन बिगड़ गया है।

क्या बिगड़े मन की यही दवा है ?

हे भगवन् ! तुमसे तर्क करना········ ···

मद पिलाकर मुझे पागल बनाना चाहते हो ?

कदापि नहीं। इसलिए पिलाना चाहता हूँ कि तुम सुचारु रूप से अपना काम कर सको।

वणिक् ने भी नशे में ही हत्या की होगी ?

मैं क्या जानूँ ?

प्रतीहारी ने चिढ़कर कहा। इतने में बालक ने लवण के हाथ को पकड़कर हिलाते हुए कहा—

बाबू ! बाबू ! बाबू !

क्या है ?

वह देखो।

लवण ने देखा कि एक गिलहरी के पीछे कुत्ता दौड़ पड़ा है। गिलहरी प्राण लेकर भागी और तुरन्त एक वृक्ष पर चढ़ गई। कुत्ता वृक्ष पर न चढ़ सकने के कारण खिझला उठा और पंजे से वृक्ष के तने को खरोचने लगा। उसकी लम्बी जिह्वा मुख से बाहर निकली थी और हाँफ रहा था। लवण ने बालक से कहा—

लो, पहुँच गए।

यह वही पीपल का पेड़ है, जहाँ नाना बैठते हैं।

प्रतीहारी के साथ श्मशान में पहुँचने पर लवण ने देखा कि दस-बारह राजकर्मचारी अपने नायक के साथ वणिक् को लिए उसकी बाट जोह रहे हैं। चाण्डाल को देखते ही वहाँ शान्त बैठी मण्डली आन्दोलित हो उठी। लवण ने देखा कि वणिक् युवा था। सुन्दर था। गौर वर्ण का था। किन्तु उसका फूल-सा शरीर मृत्यु-भय के कारण सूखकर काला पड़ गया था। वह शृंखला से जकड़ा था। मनं मारे हुआ अपनी मृत्यु की बाट देख रहा था। चाण्डाल पर दृष्टि पड़ते ही वह चिल्ला उठा। व्यग्र हो गया। उठकर भागना चाहा। किन्तु राजकर्मचारियों के क्रूर हाथों से पकड़ लिया गया। अनंतर वह व्याकुल होकर छटपटाने लगा। इस प्रकार वह बारंबार अपनी रक्षा का निरर्थक प्रयास कर रहा था। बहुत उत्पात करने पर एक सिपाही ने उसके कंठ पर तानकर घूसा मारा, जिससे वह कराहता हुआ बैठ गया और उसे मूर्छा आ गई।

वणिक् के दो शिशु और वृद्ध माता-पिता भी श्मशान मे उपस्थित थे। माता-पिता के करुण क्रन्दन से कठिन श्मशान-भूमि भी काँप उठी। बच्चे अलग बिलखा रहे थे। बच्चों से लिपटकर माता-पिता बिलखते-बिलखते भूमि में लोट गए। लवण ने सावधानी से मद्य-पात्र को पृथ्वी पर रख दिया। पास ही खड्ग रखकर श्मशान एवं श्मशानेश्वर को श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उसने

नमस्कार किया। लवण के पुत्र ने जब अपने सरीखे शिशुओं को बिलख-बिलखकर रोते देखा तो वह स्वयं रोआसा-सा हो गया। उसकी समझ में कोई बात न आई। वह उनके पास दौड़ता हुआ जा पहुँचा। माता-पिता ने उसे अपने पुत्र को वध करनेवाले का पुत्र समझकर घृणा से दुतकार दिया। इसपर बालक दुखी हो गया। अनंतर उसने जब अपने पिता की ओर देखा तो उसका दुतकारा जाना देख उसकी आँखों में खून उतर आया। उसका रौद्र रूप हो गया और वह कोष से खड्ग निकाल रहा था। राजकर्मचारी पत्थर की मूर्ति बने हुए खड़े थे। लवण ने खड्ग को पुनः कोष में रख लिया और खाली हाथ वणिक् के समीप आया। वणिक् के माता-पिता ने दौड़कर उसका पैर पकड़ लिया। उन्होंने उसके पैरों को आँसुओं से भिगा दिया। गिड़गिड़ाकर अपने पुत्र की प्राण-भिक्षा माँगने लगे। वणिक् के बच्चे पिता की गोद में आना चाहते थे। राजकर्मचारियों ने इस अन्तिम सम्मिलन में बाधा उपस्थित करना उचित न समझा। वे चुपचाप अलग खड़े हो गए। वणिक् लौह शृंखला से आबद्ध होने के कारण बालकों को गोद में न ले सका। उसके नेत्रों से अनवरत अश्रु-धारा बह रही थी। बालक भी पिता से लिपटकर रोने लगे। उनका रोना देखकर उसे अपना दुःख भूल गया। वह उन्हें पुचकारने लगा। अनन्तर लवण के संकेत पर राजकर्मचारियों ने वणिक् के बच्चों और माता-पिता को पकड़कर

अलग कर दिया। इसपर वे राजकर्मचारियों से झगड़ पड़े और नाना प्रकार के कुवाच्यों द्वारा उनका स्वागत करने लगे। इतने में लवण वणिक् के पास आ पहुँचा और उसके बच्चों को पुचकारने लगा। किन्तु उसकी रौद्र मूर्ति को देख वे घिघियाकर पिता से लिपट गए। अनंतर लवण ने वणिक् से कहा—

मित्र, क्षमा करना।

वणिक् अपने बच्चों के कारण इस समय शान्त प्रतीत हो रहा था। बहुत दिनों से जिस मृत्यु की वह प्रतीक्षा कर रहा था उसे अत्यन्त समीप देखकर उसे एक प्रकार का सन्तोष हो गया। कारण कि नित्य की मानसिक वेदना से आज वह छुटकारा पाने जा रहा था। उसने झुककर बच्चों का मुख चूम लिया और करुण मुसकान से मुसकराते हुए कहा—

मिठाई मिलेगी। रोओगे तो बिल्ली मिठाई खा जायगी। राजा, बच्चा!

पिता का यह बनावटी सन्तोष अबोध शिशुओं को धोखा न दे सका। वे पिता से लिपटे रह गए। लवण ने गम्भीर होकर सिपाहियों को संकेत किया। उन्होंने बच्चों को गोद में उठा लिया। बच्चे पिता के समीप पुनः पहुँचने के लिए गोद में छटपटाने लगे। इतने में एक बच्चे ने सिपाही की मूँछ पकड़ ली। इसपर उसने उसे एक थप्पड़ लगाया। बच्चा चोट खाकर

तिलमिलाता हुआ भय से चुप हो गया और उसे मूर्छा आ गई। अनंतर लवण ने कहा—

अपराधी, मुझे अपना काम पूरा करने दो।

वणिक् का मस्तक नत हो गया। कुछ समय पूर्व का उसका संयत हृदय अब सहसा आन्दोलित हो उठा। आँखों में चंचलता आ गई। शरीर कम्पित हो उठा। चारों ओर से अन्धकार उमड़ आया। पैरों के नीचे से पृथ्वी खिसक रही थी। तालु सूखने लगे। दाँत बज उठे। कानों में 'सॉय-सॉय' की ध्वनि होने लगी। अधर बिदुरने और सकुचित होने लगे। इस अवस्था में लवण ने वणिक् का स्पर्श किया। स्पर्श करते ही मानों उसके समस्त शरीर में बिजली दौड़ गई। उसने विस्फारित नयनों से लवण को देखा और मृत्यु के पूर्व मृत्यु के रूप को देखना चाहा। लवण उसके हाथों को पीठ पर ले जाकर बाँधने लगा। वणिक् उछल पड़ा और भागना चाहा। उसने अपनी शक्ति-भर छुटकारा पाने की कोशिश की। उधर माता-पिता और बच्चों के करुण क्रन्दन से श्मशान-भूमि प्रकम्पित हो रही थी। इसपर लवण ने अपने वज्र सरीखे हाथों से वणिक् का गला दबाते हुए कहा—

अपराधी, व्यर्थ के परिश्रम से कोई लाभ न होगा।

अब वणिक् फूट-फूटकर रोने लगा। उसका समस्त धीरज छूट गया। जब उसकी वेदनापूर्ण आँखें राजकर्मचारियों की ओर घूमीं तो उसने देखा कि उसके वृद्ध माता-पिता उनके हाथों में

पड़े हुए छुटकारा पाने का प्रयास कर रहे हैं। किंतु वे उन्हें नहीं छोड़ रहे हैं। अनंतर वे मूर्छित हो गए। वणिक् के ज्येष्ठ पुत्र का कण्ठ अत्यन्त रुदन से फट गया था। इसी समय वणिक् को नदी की ओर घुमाकर लवण ने कहा—

अपराधी, भगवान् का स्मरण कर लो।

वणिक् को अब भी अपने जीवित रहने की क्षीण आशा बनी हुई थी। वह सोचता था कि उसके माता-पिता उसी प्रकार उसे बचा लेंगे जिस प्रकार बाल्यकाल में अनेक दुर्घटनाओं से बचा लेते थे। वह बारंबार नदी की ओर से मुख घुमा लेता था। इसपर लवण ने तीव्र स्वर में कहा—

इस अन्तिम समय में भगवान् का स्मरण कर लेना श्रेयस्कर होगा।

अब मृत्यु को अपने मस्तक पर मड़राता देखकर वणिक् अत्यन्त अधीर हो उठा। उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा—

चाण्डाल, सहस्र स्वर्णमुद्रा ले लो।

क्यों ?

प्राण-दान के लिए।

वणिक् ने बहुत धीरे से कहा। इसपर लवण ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा—

बस, जीवन का इतना ही मूल्य ?

दो सहस्र।

बस ?

चार सहस्र।

अच्छा !

दस सहस्र।

कुल एक साथ बोल दो।

लवण ने मुसकराते हुए कहा। इसपर वणिक् अधीरता से बोल उठा—

पचीस सहस्र।

अपना सब दोगे ?

बाल-बच्चे और माता-पिता को छोड़कर।

नहीं।

यह कहते हुए लवण ने मस्तक हिला दिया। इतने में राजकर्मचारियों के नायक ने संबोधित किया—

चाण्डाल !

जी, अभी भगवान् का नाम ले रहा है।

अच्छा, ले लेने दो।

नायक ने शान्तिपूर्वक कहा। इसपर लवण ने आतुरता से कहा—

विलम्ब अधिक हो रहा है !

अब वणिक् ने अत्यन्त गिड़गिड़ाकर कहा—

सर्वस्व ले लो, चाण्डाल !

बाल-बच्चे भी ?

भगवान् हैं।

वणिक् ने अकाश की ओर देखते हुए कहा। इसपर लवण ने हँसकर कहा—

माता-पिता क्या करेंगे ?

कुछ कमाकर पेट पाल लेंगे।

वृद्धावस्था में क्या काम करेंगे ?

दुनिया में कोई भूखों नहीं मरता। सबको भगवान् कुछ-न-कुछ दे देता है।

मैं............

लवण कुछ आगे कहना ही चाहता था कि वणिक् अपने मतानुसार तात्पर्य लगाकर आशापूर्ण स्वर में बोला—

हाँ।

यह कहता हुआ वणिक् चाण्डाल के पैरों पर गिरने लगा। चाण्डाल उछलकर हट गया। राजकर्मचारियों ने समझा कि वह भगवान् की प्रार्थना कर रहा है। अनंतर वणिक् ने फिर कहा—

तुम्हारा गुण सदा गाऊँगा, चाण्डाल !

बड़ी भक्ति है।

आजीवन कृतज्ञ बना रहूँगा।

दुनिया को तुम्हारी क्या आवश्यकता है ?

दुनिया में रहकर तुम्हारा गुण गाऊँगा कि मैंने कभी प्राण-

भिक्षा माँगी थी। जिसे राजा न दे सका, समाज न दे सका, उसे एक चाण्डाल ने दिया।

अरे, क्या भगवान् की तरह मेरा गुण सर्वत्र गाते फिरोगे?

हाँ।

किन्तु एक चाण्डाल का गुण गाने से तुम्हें क्या मिलेगा?

तुम्हारी इस दया की गाथा बड़ी मनोहारी होगी।

द्विज और चाण्डाल का यह संबंध संसार की एक अभूतपूर्व घटना होगी।

निश्चय।

किन्तु मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इस दुनिया में तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है।

क्यों?

वणिक् ने उदास होकर आश्चर्य के साथ पूछा। इसपर लवण ने दृढ़ता से कहा—

तुम्हारे बिना दुनिया का कोई काम न रुकेगा। क्योंकि बाल-बच्चों की तुम्हें चिन्ता नहीं। माता-पिता स्वयं कमाकर खा लेंगे। पत्नी को स्वर्ग भेज ही चुके। बोलो, तुम्हारे बिना दुनिया का कौन-सा काम रुकेगा?

मित्र, जो तुम कहोगे, वही करूँगा।

क्या एक चाण्डाल के वशवर्ती बनकर सनातन के नियमों का अतिक्रमण करोगे?

हाँ, करूँगा।

इसलिए कि मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा ?

हाँ, मित्र !

तुम्हें जीने का अधिकार नहीं है।

चाण्डाल ने गम्भीरतापूर्वक कहा। वणिक् व्यग्र होकर कह उठा—

क्यों, क्यों, चाण्डाल !

तुम्हारे जीने से सनातन के नियमों का अतिक्रमण होगा।

मैं अतिक्रमण न करूँगा।

इस समय मैं जो कहूँगा, तुम वही करोगे।

अवश्य।

केवल शरीर के मोह में पड़कर।

हाँ।

किन्तु तुम्हारा मरना ही श्रेयस्कर है।

चाण्डाल ने स्थिरतापूर्वक कहा। इसपर वणिक् लंबी साँस लेता हुआ शीघ्रता से बोला—

ओह, यह क्या कह रहे हो ?

वही, जो उचित है।

हत्या किस प्रकार उचित है ?

किसकी हत्या ?

मेरी।

तुम्हारी और हत्या ?

हाँ।

तब तो तुम्हें प्राणदण्ड मिलना ही चाहिए, वणिक्!

क्यों?

यदि मुझे तुम्हें मारने का अधिकार नहीं है तो तुमने स्त्री की हत्या किस अधिकार से की?

वणिक् का मुख लज्जा से नत हो गया। उसने धीरे से कहा—

वह मेरी.........

हाँ, वह तुम्हारी स्त्री थी, इसलिए उसपर तुम्हारा अधिकार था। क्यों?

वणिक् ने कुछ उत्तर न दिया। इसपर लवण ने फिर कहा—

ठीक है। राज्य का तुम पर अधिकार है, इसलिए उसे भी तुम्हारी हत्या करने का अधिकार प्राप्त है।

मैंने राज्य का क्या बिगाड़ा है?

राज्य का नहीं तब क्या तुमने अपना बिगाड़ा है?

मैं समझ नहीं सका।

तुमने स्त्री को मारकर राज्य के एक प्राणी का व्यर्थ नाश किया।

इसमें मुझे कष्ट होना चाहिए न कि राज्य को।

तुम्हें कष्ट हुआ, इसलिए राज्य को भी हुआ।

मैं यह तो नहीं जानता था।

नहीं जानते थे, इसीलिए तो आज श्मशान में आना पड़ा।

मुझे बचा लो, भाई !

यह कहता हुआ वणिक् लवण के पैरों पर गिरकर उन्हें पकड़ रखा। बड़ी कठिनाई से लवण ने उसे उठाकर बैठाते हुए कहा—

असमय में जीवन का यह मोह अच्छा नहीं लगता।

तुम्हारे लिए सब कुछ करूँगा।

इतने से थोड़ी दूरी पर खड़ा नायक चिल्ला उठा—

यह क्या भगवान् की पूजा हो रही है ?

यह मरना नहीं चाहता।

मूर्ख, संसार में कौन मरना चाहता है ?

इसी पर मैं विचार कर रहा हूँ।

तुम्हारा काम विचार करना नहीं है।

नायक ने दूर से ही ऊँचे स्वर में कहा। इसपर लवण ने वणिक् से कहा—

मित्र, मैं क्या करूँ ? ये तुम्हें न छोड़ेंगे।

नहीं, ये छोड़ देंगे।

इनसे पूछ देखो।

अच्छा, बुला दो।

इसपर लवण ने पुकारकर नायक से कहा—

हाँ सरकार, अपराधी कुछ कहना चाहता है।

अब तक तो कहता ही रहा है। कितना कहेगा ?

आपसे स्यात् कुछ निवेदन.........

अच्छा।

नायक वणिक् के पास चला आया। उससे वणिक् ने गिड़गिड़ाकर कहा—

पचीस सहस्र मुद्रा दूँगा।

यह दुकान नहीं है।

नायक ने रुष्ट होकर कहा। अनन्तर चाण्डाल ने वणिक् को पकड़कर खींचते हुए कहा—

यह श्मशान है। इधर आओ।

वणिक् सहसा चिल्ला उठा—

सर्वस्व ले लो, नायक! सर्वस्व ले लो।

तुम अभी तो मुझे अपना सर्वस्व दे रहे थे?

लवण ने मुसकराते हुए वणिक् से कहा। अनन्तर नायक ने घृणा की दृष्टि से वणिक् की ओर देखते हुए कहा—

मूर्ख, तेरे रुपयों के कारण हम अपना प्राण दें?

नायक, तुम इतना रुपया जन्म-पर्यन्त न कमा सकोगे।

तुम्हारी कमाई इस समय किस काम आ रही है?

नायक, तुम धन के लिए ही तो राजाज्ञा का पालन करते हो?

धन के लिए धर्म को वेचना मैंने नहीं सीखा है।

हत्या कब से धर्म हुई?

जब से मनुष्यों में कायरता, असहिष्णुता, पाप आदि दुष्प्रवृत्तियों का उदय हुआ।

अब वणिक् चुप हो गया। अनन्तर नायक ने चाण्डाल को संबोधित करते हुए आदेश दिया—

चाण्डाल, विलम्ब करना ठीक नहीं।

अभी लीजिए।

लवण ने उमंग के साथ कहा। अनन्तर वणिक् को उसने खूँटे से बाँध दिया। अब किसी प्रकार की आशा न देखकर वणिक् उदास हो गया। वार्तालाप के समय उसका मनस्ताप प्रच्छन्न हो गया था। अब वह पुनः आविर्भूत हो गया, जिससे उसके मुख पर कालिमा दौड़ आई। धमनियाँ शिथिल होने लगीं। हृदय की गति तीव्र हो गई। संसार के मोह ने उसे अस्थिर कर दिया। मृत्यु की कल्पना से वह काँप उठा। इस समय उसकी समस्त वृत्तियाँ शरीर-रक्षा के लिए व्यग्र हो उठीं। उसे अपने बाल-बच्चे, माता-पिता आदि का ध्यान जाता रहा। इस घोर निराशा के बीच उसे भगवान् का स्मरण हो आया। वह सहसा बोल उठा—

हे भगवन्! हे भगवन्!

इस समय चाण्डाल अत्यन्त गम्भीर दिखाई दिया। कारण कि उसे अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करना था। उसने खड्ग को उठाते हुए कहा—

भगवन्, क्षमा करना। रजाज्ञा है।

वह खड्ग चलाना ही चाहता था कि उसके पुत्र ने दौड़ते हुए समीप आकर व्यग्रता से पुकारा—

बाबू! बाबू!

क्या है?

कार्य में विघ्न उपस्थित हुआ देख लवण ने खड्ग की ओर देखते हुए चिढ़कर कहा। इसपर बालक ने भयभीत होकर पूछा—

पिताजी, क्यों मारते हो?

पुत्र की करुणापूर्ण कातरता को देखकर लवण का हृदय भी द्रवित हो गया और उसने धीरे से कहा—

इसमें मेरा क्या दोष है?

राजकर्मचारियों की ओर अंगुल्यानिर्देश करते हुए बालक ने पूछा—

तब क्या इनका है?

इनका भी नहीं।

राजा का है?

उनका भी नहीं।

पिताजी, तब यह क्यों मारा जाता है?

धर्म कहता है।

क्यों कहता है?

इसलिए कि न्याय है।

तब इसी का दोष है ?

कौन जाने !

अब फिर वणिक् भगवान् का नाम लेना भूल गया। क्योंकि अपने पक्ष से चाण्डाल-पुत्र को बोलते देख उसे पुनः जीने की आशा उत्पन्न हो आई। वह खूँटे से बँधा हुआ उन दोनों की बातें बड़ी सावधानी से सुनने लगा। चाण्डाल-पुत्र ने फिर पूछा—

पिताजी, जब किसी का दोष नहीं है तो इसको क्यों मारोगे ?

अब लवण विचार-मग्न दिखाई दिया। नायक अत्यंत चतुर व्यक्ति था। उसे अपने जीवन में इस प्रकार की अनेक घटनाओं को देखने का अवसर प्राप्त हो चुका था। इस अवसर पर लवण का हिचकना देखकर वह बोल उठा—

चाण्डाल, यह ज्ञान-चर्चा फिर भी हो सकती है। अवकाश के समय संयत होकर अपने पुत्र को उपदेश दे लेना।

हाँ नायकजी,.........

लवण कुछ आगे कहना ही चाहता था कि नायक बीच में बोल उठा—

राज्य के समय का कुछ मूल्य होता है।

मनुष्य के जीवन का भी मूल्य है।

यह सुनकर नायक चौंक उठा। अनंतर अपना अधिकार प्रदर्शित करता हुआ बोला—

चाण्डाल, तुम्हें अपने कर्तव्य का ज्ञान होना चाहिए।

अब लवण ने अपने पुत्र की ओर सस्नेह देखते हुए कहा—

बेटा, मैं विवश हूँ।

पिताजी, क्यों ?

वणिक् मरने के लिए विवश है और मैं मारने के लिए।

ये लोग ?

ये मुझसे वध कराने के लिए विवश हैं।

राजा ?

वे भी अपने राजधर्म के विवश हैं।

पिताजी, तब सारी दुनिया विवश है ?

इतने में नायक ने फिर डपटकर कहा—

चाण्डाल, क्या तुझे कुछ ज्ञान है ?

ज्ञान की ही बात कह रहा हूँ, नायकजी !

चाण्डाल, यह स्थान और अवसर ज्ञान छाँटने का नहीं है।

इसके लिए यही स्थान और अवसर सर्वथा उपयुक्त है।

यह कहते हुए लवण ने गम्भीर निःश्वास का परित्याग किया। इसपर नायक ने रुष्ट होकर सिपाहियों से कहा—

बालक को हटा दो।

यह सुनते ही दो सिपाही उसकी ओर टूट पड़े। बालक अपने

पिता से लिपट गया। किन्तु उन्होंने बलात् खींचकर अलग कर दिया। बालक ने दूर से चिल्लाते हुए कहा—

वध न करना, पिताजी !

लवण ने विवश होकर बालक की ओर से मुख फेर लिया। अनन्तर बालक ने वणिक् के परिवार की ओर अँगुली दिखाते हुए कहा—

पिताजी, देखो। ये रो रहे हैं।

यह समय लवण के लिए अत्यन्त संकट का था। वह अत्यंत आत्मसंयम से काम ले रहा था। इधर बालक सिपाहियों के हाथ में पड़ा हुआ छूटने का व्यर्थ प्रयास कर रहा था। इसपर एक सिपाही ने डपटकर कहा—

दुष्ट, शान्त रह !

अपने पुत्र का इस प्रकार डाँटा जाना लवण को अच्छा न लगा। वह घूमकर करुणा-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। इसपर नायक ने कठोर स्वर में आदेश दिया—

चाण्डाल, शीघ्र खड्ग उठा।

लवण ने मुड़कर खड्ग उठाया। किन्तु चलाने के पूर्व उसने अपने पुत्र की ओर देखा और लक्षित किया कि बालक के सरल नेत्रों में पितृ-प्रेम के स्थान पर कारुण्य छलक रहा था। उसके अश्रुपूर्ण नेत्रों मे विवशता की व्यथा भरी हुई थी। वह सिपाहियों द्वारा जकड़ा हुआ भी आत्मविश्वास-भरी दृष्टि से

पिता की ओर देख रहा था। अब लवण ने अधीर होकर उस ओर से मुख मोड़ लिया। उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा और अपने ऊपर घृणा आने लगी। उसका मन अपने कर्त्तव्य-पथ से उचट चला। अपनी इस गर्हित वृत्ति पर उसे ग्लानि उत्पन्न हो गई। उसका खड्ग अधीर एवं शिथिल हाथों में अधिक देर तक उठा न रह सका और सहसा झुक पड़ा। अपनी विवशता का स्मरणकर उसका मस्तक नत हो गया। इतने में नायक ने तुरन्त मद्यपात्र भरकर समीप पहुँचते हुए कहा—

चाण्डाल, आओ !

लवण उसके इस प्रेम-सूचक व्यवहार को देखकर विस्मित हो उठा। नायक ने चुभती दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा—

भैरव का प्रसाद है।

लवण हिचका। इसपर नायक ने कठोर मुद्रा बनाकर उसे संबोधित किया—

क्यों चाण्डाल !

लवण ने एक बार नायक की ओर चुपचाप देखकर किं कर्तव्य-विमूढ़ होकर दृष्टि फेर ली। इसपर नायक ने फिर गरजकर कहा—

अरे, चाण्डाल कहीं का !

उस क्रुद्ध नायक की यह उद्धत ध्वनि श्मशान-भूमि में गूँज उठी। खूँटे से बँधा वणिक कभी अपने सम्मुख नीचा

मस्तक किए खड़े चाण्डाल की ओर और कभी क्रूर दृष्टिधारी नायक की ओर देखने लगा। भगवान् की ओर से भी उसका ध्यान हट गया। इतने में एक सिपाही ने शीघ्रता से सिर पर रुमाल फेंककर वणिक् का मुख ढँक दिया, जिससे वह फिर कुछ न देख सका। अब वणिक् अत्यन्त अधीर होकर रुमाल को हटाने की चेष्टा करने लगा। इतने में नायक ने मद्यपात्र लवण के अधरों से लगा दिया। उसके उत्कट गन्ध से उसका मस्तिष्क भर गया और उसकी उस विचारशील मुद्रा में परिवर्तन होने लगा। मन उतावला हो उठा। मूर्च्छना के व्याज से एक बार झूमते हुए उसने चषक थाम लिया। अनन्तर आँख मूँदे हुए मद्य को पीकर भूमि में प्याला लुढ़काता हुआ बोल उठा—

जय भैरव की!

मनुष्य-वध?

इसी समय यह कहता हुआ नाचता-कूदता कापालिक भी वहाँ आ पहुँचा। राजकर्मचारी उसे नमस्कार कर पीछे हट गए। वणिक् को खूँटे से बँधा देख वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। सभी लोग उसके तेज-सम्पन्न मुख की ओर देखने लगे। कापालिक ने नाचते-नाचते वणिक् के समीप पहुँचकर झुककर उसे देखा। अनन्तर अपना खप्पर ठीक करता हुआ बोल उठा—

लवण क्या देखता है? भर दे मेरा खप्पर। आज मुझे सद्य रक्त पिला दे। भगवान् तेरा भला करेगा।

यह कहते हुए कापालिक ने अपना खप्पर वणिक् के कंठ के नीचे लगा दिया और लवण की ओर देख उसे उत्तेजित करते हुए कहा—

हाँ लवण, जय देवी की !

लवण उमंग के साथ खड्ग उठाने लगा। कापालिक ने और उत्साह दिलाया—

लवण, देवी प्रसन्न होगी। हाँ पुत्र, वाह !

देखते-ही-देखते लवण का खड्ग तन गया। बच्चे रो पड़े। राजकर्मचारियों ने उनके मुखों पर हाथ लगा दिया। पिता मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर गया। माता पागल-सी चिल्ला उठी। इस हलचल के समय वणिक् ने वस्तुस्थिति समझने की उत्कट आकांक्षा से अपने मस्तक को जोर से झटका, जिससे रुमाल हट गया और उसने अपने सामने देखा—तना हुआ खड्ग, लवण की आँखों से निकलती चिनगारियाँ और कापालिक का रौद्र वेष। वह भयाकुल हो चीत्कार करना ही चाहता था कि खड्ग चल पड़ा और मस्तक छिन्न हो गया। लवण कूद पड़ा अपने मद्यपात्र पर और कापालिक खप्पर में रोपने लगा सद्य रक्त।

# १०

लवण अब खासा चाण्डाल हो गया। उसका वर्ण गौर अवश्य था; किन्तु इसके अतिरिक्त ऐसी कोई भी वृत्ति उसमें शेष न रह गई थी जिससे प्रकट होता कि वह चाण्डाल से इतर जाति का मनुष्य है। वह अन्य चाण्डालों की भाँति मांस बेचता फिरता। जंगलों में जाकर पक्षियों को पकड़ने के लिए वीतंस फैलाता और उन्हें फँसाता। उनकी गर्दन मरोड़कर स्वयं रक्त-पान करता और अपने बच्चों को भी कराता। वृक्षों की सूखी पत्तियाँ एकत्रकर मांस भूनता और अपने सहयोगियों के साथ बड़े चाव से खाता। जब किसी वन में मृगया के लिए जा पड़ता तो वहाँ के पशु-पक्षी भयाकुल हो भागने लगते। वह उन्हें पकड़कर बड़ी नृशंसता के साथ बेधता और जब वे छट-पटाने लगते तो खिलखिलाकर हँस पड़ता।

लवण जब श्मशान में जाता तो वहाँ किसी के बन्धु-बान्धवों को रोते देखकर उसे हँसी आती। वह उसे अपने नित्य के

जीवन की विनोद-सामग्री समझता। शोकाकुल व्यक्तियों को सांत्वना देते समय एक प्रकार से उसका मन-बहलाव होता था। अपने सूने संसार में पड़ी हुई किसी विधवा के करुण-क्रंदन में, असहायावस्था को प्राप्त किसी के माता-पिता के विनशन विलाप में एवं लालन-पालन से वंचित अबोध बालकों के रोमहर्षण रुदनों में अब लवण के हृदय को हिलाने की शक्ति नहीं रह गई थी। सारांश यह कि उसके हृदय में दयाद्रता के स्थान पर कठोरता, करुणा के स्थान पर क्रूरता एवं शिष्टता के स्थान पर बर्बरता ने आश्रय ग्रहण कर लिया था। उसकी मुखश्री हत हो गई थी। इतने पर भी यदि वह जीवित कहा जाता था तो केवल इसी दृष्टि से कि वह चलता-फिरता दिखाई देता था। औरों के निकट वह साक्षात् काल-स्वरूप प्रतीत होता था। फिर भी अपने परिवार का वह जीवनाधार और उस जाति का प्रसिद्ध चाण्डाल गिना जाता था।

लवण चाण्डाल-मण्डली के साथ सहर्ष विचरण करता, परस्पर झगड़ता, कुवाच्य कहता, मारपीट करता, रोता-गाता एवं अन्य सभी वे कर्म करता जो उस मण्डली में पाए जाते थे। वह चाण्डालों के साथ विहार करने जाता। मधुवार में पानगोष्ठिका में सहर्ष सम्मिलित होकर वह अवदंश के साथ चषक भर-भरकर माध्वीक एवं मैरेय पान करता। मदावेग में खूब प्रलाप करता, कभी खुलकर नाचता और हल्लागुल्ला करने में किसी से

पीछे न रहता। उस समय उसे लज्जा का किंचित् भी बोध न होता। जब वह विक्षिप्त-जगत् में सैर करता-करता मूर्छित होकर गिर जाता तो चाण्डाल-कन्या आकर उसे उठाती। उसके आश्रय में अपने को पाकर वह तन्मय हो जाना चाहता और जब वह उससे पृथक् होने का प्रयत्न करती तो वह क्षुभित होकर अपनी भुजाओं से बलात् उसे बाँधने का प्रयत्न करता। उस समय उसकी मुद्रा और भी भयंकर हो जाती थी, जिससे उसकी मद से चढ़ी आँखें और चढ़ जाती थीं। उसे क्रोध आ जाता और उसके उस अशक्त क्रोध को देखकर उसकी मद्यप-मंडली परिहास करने लगती थी। वह कभी उछलता, कभी मुख बनाता, कभी परिहास करते लोगों की ओर क्रूरता से देखते हुए कुछ अनर्गल बातें बकता, कभी लटपटा जाता और इंद्रियाँ उसका साथ न देतीं। उस समय चाण्डाल-कन्या व्याकुल होकर उसे सँभालती हुई खींचकर किसी एकान्त कुञ्ज में ले जाती और वह गिरता-पड़ता तथा बड़बड़ाता हुआ उस ओर चल पड़ता।

कुछ काल के पश्चात् मदावेग के नष्ट होने पर उसकी चैतन्यावस्था में जब चाण्डाल-कन्या उससे पूछती, उसके कर्मों की याद दिलाती और फटकारती तो लवण की आँखों में करुणा उतर आती। उसे अपने ऊपर दुःख होता और बड़ी कृतज्ञ-दृष्टि से चाण्डाल-कन्या की ओर देखता। उसकी उस दृष्टि में मनोवेदना होती, याचना होती, अपने ऊपर ग्लानि होती एवं विवशता

होती। उस समय चाण्डाल-कन्या भी उसकी भरभराई आँखों को देखकर असंयत हो उठती, आँसू बहाने लगती एवं उसके अंक में गिर जाती।

लवण मद्य पीने पर जहाँ मनुष्यता की सीमा को पार कर जाता था, वहाँ न पीने की अवस्था में वह साधारण गृहस्थ-सा बना रहता। अपनी साधारण अवस्था में वह गृहस्थी के नाना प्रकार के झंझटों को झेलता हुआ उसी में हँसता, खेलता, कूदता, नाचता और गाता था। किन्तु मद पी लेने पर वह सब कुछ भूल जाता और साथ ही भूल जाता था अपनी मनुष्यता को। उस समय वह अत्यंत नृशंस बन जाता था। बड़ा भयावना लगने लगता था। किसी को उसके सम्मुख आने का साहस नहीं होता था। उसके बलिष्ट शरीर से लोग स्वभावतः डरते थे। उसका उपहास दूर से ही करते थे। जब कभी वह उनके उपहास से विचलित हो जाता तो चाण्डाल-कन्या उसके समीप आती। उसे शान्त करती। उसे देखते ही उसकी बर्बरता का अंत हो जाता और वह पालतू पशु-सा उसके पीछे चल देता था।

लवण का ज्यों-ज्यों दिन बीतता गया त्यों-त्यों वह पूरे चाण्डाल के रूप में परिणत होता गया। अब वह अपने प्राचीन जीवन को एकदम भूल चुका था, उसे जो कुछ स्मरण था वह इतना ही कि किसी समय विन्ध्यारण्य में आया और चाण्डाल-कन्या ने उसके प्राण की रक्षा की। उसके बाद से वह अपने नवीन कुटुम्ब

के साथ श्मशान की सेवा करता है।

जिस प्रकार मनुष्य का समय बदलता रहता है उसी प्रकार प्रकृति में भी अंतर पाया जाता है। लवण के इस जीवन में एक समय ऐसा आया कि घोर अकाल पड़ा। प्रलयकालीन ज्वाला का दृश्य चारों ओर उपस्थित हो गया। बिना अन्न-जल के लोग मरने लगे। एक परिवार के कई व्यक्ति एक दूसरे का साथ त्यागकर जीवन-रक्षार्थ अलग-अलग भागने लगे। श्मशान की भी सब आय मारी गई। अरण्य पशु-पक्षियों से शून्य हो गए। जहाँ-तहाँ क्षुधा-पीड़ा से मृत पशुओं के मांस-विहीन कंकाल पडे थे। दूसरे पशु तथा मांस-भक्षी जीव उनके मांसों को इस प्रकार खरोंच-खरोंचकर खा गए थे कि ऐसा प्रतीत होता था मानों अस्थियाँ चाकू से छीलकर साफ की गई हों। चारों ओर भयंकर निराशा एवं व्याकुलता के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।

श्मशान में कितने ही शव लुंठित पड़े थे। पहले तो कुत्तों तथा गृद्धों आदि की बन आई। परन्तु जब कुत्ते चाण्डालों के पेट मे चले गए तो अन्य गृद्धादि जीव अपने प्राणों को लेकर गहन वनों में भाग गए और वहाँ मृत्यु-मुख में पड़े जन्तुओं पर टूटने लगे। श्मशान की अवस्था इतनी अधिक भयंकर एवं शोचनीय हो गई थी कि बिना दग्ध किए गए शवों की दुर्गन्धि से वहाँ किसी का जाना कठिन हो गया था।

जब नदी सूख चली, जिससे उसकी मछलियाँ भी समाप्त हो गईं तो चाण्डालों में हाहाकार मच गया। किसी समय जो नदी अपनी भरीपुरी अवस्था में जीवन-संचार एवं शान्ति उत्पन्न करती थी, वह आज अजगर-सी भयंकर और बीहड़ दिखाई देने लगी। लवण दिन-रात प्राण-रक्षा का कोई-न-कोई उपाय खोजा करता; किन्तु उसे कोई उपाय दिखाई न देता। अपने बच्चों की दयनीय स्थिति ने उसे और भी बेचैन बना दिया। अन्त में अपना पौरुष हारकर वह चुपचाप बैठ गया। इसपर एक दिन चाण्डाल-कन्या ने कहा—"अब क्या होगा ?"

स्त्री ने और कुछ न कहा और अपने छोटे बच्चे को छाती से लगाकर आँसू पोंछने लगी। उसके स्तन का दूध सूख गया था। क्षुधा से व्याकुल बच्चा चुप न हो रहा था। इसे देख लवण विकल हो उठा और बैठा न रह सका; चट खड़ा हो गया। पास ही कूप था। उसमें एक कंकड़ उठाकर जब उसने फेंका तो जल की आवाज नहीं आई। तुरन्त वह उछलकर कूप पर जा पहुँचा। जब झाँककर देखा तो उसमें जल न था। केवल गीली मिट्टी शेष रह गई थी। लवण को मूर्छा आने लगी। उसके नेत्रों के सम्मुख अन्धकार छा गया। वह कुँएँ की जगत की थूनी को थामकर गथ-हारे जुआरी के समान जगत पर निराश बैठ गया। उसका चित्त अत्यन्त चंचल हो उठा। मस्तक घूमने लगा। अपने दोनों हाथों से मस्तक थामकर सिर नीचा किए बैठ गया।

चाण्डाल-कन्या भी उसके समीप चली आई। अपने पति की अवस्था पर वह विकल हो उठी। पास में बैठ गई और लवण के मस्तक पर सूखे रहट्ठे-सा मांस-रहित हाथ रखकर बोली—

दुखी हो ?

लवण ने इतने दिनों साथ रहकर आज ही उसके सरल एवं निष्प्रभ लोचनों में समवेदना, सहृदयता, दया, स्नेह आदि सद्-वृत्तियों से समन्वित करुणा की झलक पाई। उसने उसके हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कहा—

अब चलना चाहिए।

कहाँ ?

जहाँ कहो।

क्यों ?

यहाँ जल नहीं है।

यह सुनते ही चाण्डाल-कन्या का मुख और उतर गया। उसने विकल होकर पूछा—

तब ?

क्या कहूँ ?

यह कहता हुआ वह कुँएँ की जगत से उठ गया। चाण्डाल-कन्या अपनी गोद में बच्चे को सुलाती हुई बोली—

बच्चों का क्या होगा ?

भगवान् जानें।

कैसे भगवान् ?

चाण्डाल-कन्या के मुख पर घृणा दिखाई दी। लवण ने धीरे से कहा—

भगवान् को कोसने से क्या होगा ?

ऊँह !

चाण्डाल-कन्या ने उपेक्षा प्रदर्शित की। अनंतर लवण ने पूछा—

कुछ है ?

हाँ, थोड़ा सूखा मांस।

उसे ले लो और अब यहाँ से प्रस्थान करना चाहिए।

उससे एक दिन का भी काम न चल सकेगा।

बच्चे तो खा लेंगे ?

और ?

तब तक हम लोग कहीं पहुँच ही जाएँगे।

चाण्डाल-कन्या ने कुछ उत्तर न दिया। वह कभी अपनी पुरानी झोपड़ी को तथा कभी ग्राम को अत्यंत अधैर्य के साथ देखती हुई मानों किसी अतीत सौन्दर्य को ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रही थी। इसे देखकर लवण ने कहा—

उधर क्या देखती हो ?

चाण्डाल-कन्या ने आँखों से आँसू पोंछा। अब लवण ने अत्यंत उदास होकर कहा—

ये सब निर्जीव हैं। मिथ्या हैं।

चाण्डाल-कन्या का गला भर आया था। उसने मुख फेर लिया। इसपर लवण ने कहा—

मैंने श्मशान में कितने ही मनुष्यों का वध किया और कितने ही मुर्दों को जलाया है। यह सब यही सोचकर किया कि जीव के शेष हो जाने पर शरीर व्यर्थ हो जाता है। पुण्य-क्षय हो जाने पर काया चेतनाहीन हो जाती है। उसी प्रकार इस झोपड़ी के हम लोग जीव हैं। जब हम चल पड़े तो इसका जीवन भी चला।

चाण्डाल-कन्या ध्यानपूर्वक लवण की बातें सुनती और बीच-बीच में निराश-दृष्टि से उसकी ओर देखती झोपड़ी की ओर जा रही थी। झोपड़ी के द्वार से ही अपनी माँ को पुकारती हुई वह भीतर घुसी। लवण भी उसके पीछे था। वहाँ उसने माता-पिता को अपनी अन्तिम घड़ियाँ गिनते पाया। माँ का रूप अधिक भयानक हो गया था। सिर के खुले सूखे बाल भालू के बाल की तरह बिखरे थे। अँगुलियों के बढ़े हुए नख शेर के नाखून की तरह निकल आए थे। आँखें भीतर को धँस गई थीं। शरीर धूल से भरा था। चाण्डालिन की बगल में चाण्डाल विवश पड़ा था। अपनी कन्या तथा जामातृ को समीप आते देख उनकी आँखों में आशा झलक उठी। माँ ने 'साँय-साँय' के स्वर में पूछा—

कुछ है?

कन्या की आँखों में आँसू छलछला आए। वह बालक को

लिए हुई अपनी माँ की गोद में गिर पड़ी। बालक जागकर रोने लगा। लवण ने उसे अपनी गोद में ले लिया और पुचकारता हुआ बाहर निकल आया। माँ की आँखें भर आईं। उसने अपने दुर्बल हाथों को उठाकर कन्या को शान्त करना चाहा; किन्तु अत्यंत शक्तिहीन होने के कारण वे थोड़ा ही उठकर गिर गए। अनंतर कन्या ने कहा—

माँ, पानी सूख गया।

माँ की निराशा अधिक गंभीर हो गई। उसका तप्त कण्ठ अवरुद्ध हो गया और उसने मुख फेर लिया, मानों अपनी कन्या की ओर वह देखना ही न चाहती हो। संभवतः वह अपनी कन्या के मुख से यह सुनना चाहती थी कि वह खाने के लिए भोजन और पीने के लिए जल लाई है। संसार में माता-पिता इसी आकांक्षा से अपनी संतान का लालन-पालन करते हैं कि उन्हें वृद्धावस्था में सहायता मिलेगी, जिससे किसी प्रकार का कष्ट न होगा। किन्तु इस समय परिस्थिति ही दूसरी थी। अकाल-पीड़ा ने सबके कर्तव्यों को भुला दिया था। सभी को अपनी जान के लाले पड़े थे। फलस्वरूप सभी का एक ही अपनी प्राण-रक्षा का स्वार्थ दिखाई देता था। माता का इस प्रकार अधैर्य देखकर चाण्डाल-कन्या का हृदय भर आया। जब उसके शोकाभिभूत हृदय में अधिक करुणा न समा सकी तो नेत्रों के मार्ग से बाहर निकलने लगी। फलस्वरूप वह माता-पिता के पास बैठी हुई रो रही

थी और उसे कोई समझानेवाला भी न था। इतने में बाहर से क्षुधार्त बालकों के रोने की आवाज उसे सुनाई दी, जिससे वह और भी विकल हो उठी। उसने यह भी सुना कि लवण उन्हें पुचकार रहा है। अब, उसने अपने मन को थोड़ा संयत-कर माँ को संबोधित किया—

माँ!

माता की शिथिल पलकें धीरे से उठीं और कन्या के मुखपर उसकी दृष्टि पड़कर स्थिर हो गई। कन्या कुछ कहना चाहती थी; किन्तु लज्जा एवं संकोच के कारण नहीं कह न सकती थी। अब, माँ ने अत्यंत क्षीण स्वर में पूछा—

बेटी, क्या.........

वह बाहर जाना चाहते हैं।

यह कहती हुई कन्या माता की गोद में गिरकर रोने लगी। माँ की आँखों से भी आँसू निकल पड़े। मुमूर्षु पिता अभी तक चुपचाप पड़ा था। अब, उससे अधिक न रहा गया और जब उसने अधीरता के साथ पलकें खोलीं तो देखा कि चाण्डालिन के शुष्क कपोल आँसुओं से तर हो गए हैं और उसकी कन्या बच्चों के समान माँ की गोद में सिर रखकर रो रही है। इसपर पिता ने पूछा—

क्या है?

कन्या पिता का हाथ पकड़कर जोर से रोने लगी। इतने में

लवण ने बाहर से पुकारकर कहा—

विलम्ब हो रहा है।

पिता ने आश्चर्य के साथ पूछा—

बेटी, क्या है ?

पिताजी, मैं नहीं जाऊँगी।

कहाँ ?

तुम लोगों को छोड़कर।

कन्या ने पिता के हाथों को जोर से पकड़ते हुए कहा। पिता ने हाथ छुड़ाकर उसके मस्तक पर प्रेमपूर्वक हाथ फेरते हुए कहा—

बेटी, जहाँ अन्न-जल सुलभ हो, वहाँ जाओ।

पिता के म्लान मुख पर अधिक उदासी छा गई। वह पहले से ही स्वल्पभाषी था। इस समय वस्तुस्थिति ने उसे अत्यंत शान्त बना दिया था। उसने निश्चय कर लिया था कि मृत्यु से वह बच नहीं सकता। अतः वह मानों मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा था। अब, संसार से वह मोह-माया त्याग करना चाहता था। वह यह जानता हुआ भी कि इस समय उसे छोड़कर कन्या का अन्यत्र कहीं चला जाना लौकिक एवं पारलौकिक दोनों दृष्टियों से श्रेयस्कर न होगा, फिर भी स्वाभाविक ममता-जन्य सन्तान की हित-कामना का मोह नहीं छोड़ सकता था। यही मोह सन्तान के समस्त अवगुणों पर पर्दा डालता हुआ उसके निःश्रेयस अभ्युदय की आकांक्षा

उत्पन्न करता है। चाण्डाल की भी यही भावना थी। लवण जब बाहर से पुकारने लगा तो पिता यह सोचकर प्रसन्न हो गया कि उसकी पुत्री बच जायगी, नातियों की प्राण-रक्षा होगी और उसके वंश का नाम शेष रह जायगा। अतः अपनी कन्या की स्वाभाविक दुर्बलता एवं कातरता को दूर करने की गरज से उसने कहा—

बेटी, बाहर जाकर देखो।

कन्या अब अपने अंचल में मुख छिपाकर सिसकियाँ लेने लगी। चाण्डाल अपनी समस्त शक्ति एकत्रकर धीरे से उठा और दीवाल के सहारे उठँगकर बैठ गया। उधर माँ भी पुआल में मुख छिपाए सिसकियाँ ले रही थी। चाण्डाल ने अपनी स्त्री के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा—

क्यों रोती हो? यहाँ रहकर ये सब क्या जान देंगे?

यह कहकर चाण्डाल अत्यन्त शिथिल हो गया। माँ और जोर से सिसकियाँ भरने लगी। इसपर चाण्डाल ने अत्यन्त धीमे स्वर से कहा—

अरे, बेटी को यहाँ रखकर मारना चाहती हो?

अब माँ का रुदन कम हो चला। इसी समय लवण ने झोपड़ी में प्रवेश किया। माता, पिता और कन्या तीनों की आँखों को अश्रुपूर्ण देखकर उसका हृदय भर आया। अब उसकी बाहर जाने की इच्छा काफूर हो गई। मन कहने लगा कि इन

वृद्धों को इस दयनीय अवस्था में त्यागकर कहीं जाना ठीक न होगा। एक साथ मरने में भी सुख होता है। इसी ऊहापोह में पड़ा हुआ वह श्वसुर के सम्मुख चुपचाप खड़ा हो गया। श्वसुर ने धीरे से पलकें उठाकर स्नेहिल लोचनों से ऊपर से नीचे तक उसे देखते हुए कहा—

पुत्र, तुम्हें अवश्य जाना चाहिए।

मैं कैसे..............

लवण कह ही रहा था कि चाण्डाल बीच में टोंकता हुआ बोल उठा—

तुम्हारी सन्तानों ने क्या बिगाड़ा है कि वे यहाँ रहकर भूखों मरें ?

तब इससे क्या ?

नहीं। लवण, उनकी प्राण-रक्षा करना ही परम धर्म है।

किन्तु इस समय तो चारों ओर आग लगी है। सारा संसार दग्ध है। वृक्षों के पत्ते तक सूख गए। वन पशुओं से शून्य हो गए। नभ-मण्डल में विहंगमों का कहीं दर्शन तक नहीं होता। ऐसी भयावह अवस्था में भला मृत्यु से कौन बच सकता है ? फिर तो अपने कुटुम्ब में, अपने स्वजनों के बीच मरने में ही सुख है।

इतना कहते-कहते लवण का गला भर आया। उसने वहीं से बाहर दृष्टि दौड़ाकर देखा कि पीपल के वृक्ष के नीचे उसके बच्चे

मुँह लटकाए बैठे हैं। अब उसका हृदय कचोट उठा। वह विकल होकर विचारने लगा कि क्या करें, क्या न करें? इसी समय चाण्डाल ने कहा—

पुत्र, यह समय विचार करने का नहीं है। बच्चों ने हमारा क्या बिगाड़ा है कि हम अपनी मोह-माया के लिए उनका नाश करें?

यह कहते हुए चाण्डाल ने शिथिल होकर आँखें बन्द कर लीं। वृद्ध की ममत्व-भरी बातों से लवण का हृदय भर आया। अब, उसे वहाँ अधिक ठहरना भार होने लगा। वह चाहता था कि उठकर बाहर चले; किन्तु संकोच के कारण उसके पैर न उठते थे। इसी बीच चाण्डाल ने पलकों को बन्द किए हुए कहा—

पुत्र, जाओ। तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ।

इसके उत्तर में लवण कुछ कहना ही चाहता था कि बाहर बच्चे रो पड़े। उन्हें सँभालने के लिए वह आतुर हो बाहर निकल पड़ा और उसके पीछे निकल पड़ी बच्चों की माँ चाण्डाल-कन्या।

# ११

प्रिये, यह वही स्थान है, जहाँ अपने इस नवीन जीवन-प्रभात के उषाकाल में हम लोग मिले थे। उस समय मैं दुखी और तुम सुखी थीं। और आज ?—यह सारा संसार दुखी है।

लवण खड़ा-खड़ा उस पलास-वृक्ष को देख रहा था, जिसकी शीतल छाया में वह किसी दिन भूख-प्यास से पीड़ित पड़ा हुआ अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रहा। उस समय पलास भी हरा था। सभी वृक्ष हरे थे। चाण्डाल-कन्या भी हरी थी। यदि कोई दुखी था तो केवल लवण दुखी था। चाण्डाल-कन्या को उस दिन की स्मृति आते ही वह लज्जित हो उठी। उसकी दृष्टि भूमि की ओर चली गई। अनंतर लवण ने फिर कहा—

देखो, प्रकृति में कैसी प्रलय-सी क्षुब्धता है। प्रलय के पश्चात् की नीरवता समस्त संसार में व्याप्त है। प्रलयाग्नि समस्त संसार को दग्ध कर चुकी है। उसकी ऊर्जस्वित प्रचंड ज्वालाओं का अकांड तांडव यहाँ भी चारों ओर हो चुका है। कहीं एक पत्ता

भो हरा दिखाई नहीं दे रहा है। समस्त भूमि तप्त है। चारों ओर से रज के ढेर-के-ढेर उड़ रहे हैं। वायु हमें झुलसा रही है। चन्द्र की ज्योत्स्ना कहीं दिखाई नहीं दे रही है। आकाश-मण्डल से उल्काओं का पात हो रहा है। कहीं एक बूँद भी जल नहीं दिखाई देता। चारों ओर की निर्जनता हम लोगों को खाने दौड़ रही है।

चिंता-मग्न चाण्डाल-कन्या अवधानतापूर्वक ज्यों-ज्यों लवण की बातें सुन रही थी त्यों-त्यों उसके स्मृति-पटल पर प्रथम मिलन के समस्त उल्लास-प्रद दृश्य अंकित होने लगे। उसे सुध हो आई कि उस समय प्रकृति कितनी उल्लसित थी। पक्षियों के स्वर में प्रकृति का मंगल-गान अन्तर्हित था। चन्द्र-ज्योत्स्ना के उज्वल विलास में मुग्ध हो वह मुसकरा रही थी। हरिताभ परिधान धारण किए मधुकरों की गुंजार में वह मंगलाशा का संदेश घर-घर पहुँचा रही थी। मधुवाही गंधवह के मंथर गति-विलास में उस समय जीवनोल्लास चारों ओर थिरक रहा था। और साथ ही; उल्लसित था उन दोनों का प्रथम मिलन एवं अनुराग की अरुणिमा। इसकी स्मृति आते ही चाण्डाल-कन्या का मस्तक नीचे झुक गया। अपांगों में अश्रु-कण कृपण के सोने की भाँति छिपे रह गए। वह ठिठक गई। अनंतर लवण फिर बोला—

आगे चलो। इस स्थान की स्मृति, इस स्थान की ममता, आज हमारी कुछ सहायता न करेगी। उनसे अन्न-जल का काम

न निकल सकेगा। वह तो जीवन की एक कल्पना थी, एक संकल्प था, जिसका लय हो चुका है।

लवण बच्चों को उँगलियाँ थमाए आगे बढ़ा। चाण्डाल-कन्या मस्तक नीचा किए उसका अनुगमन करने लगी। चलते-चलते लवण ने रुककर कहा—

यह स्थान आज कितना शून्य एवं भयप्रद है। यह कितना मर्मान्तक कष्टकर प्रतीत हो रहा है। यहाँ किसी दिन तुमने जामुन का रस पिलाकर मुझे प्राण-दान देते हुए कुछ माँगा था और आज?

चाण्डाल-कन्या को अतीत कल्पना की यह स्मृति निराशा को बढ़ानेवाली प्रतीत हुई। उस समय की प्रत्येक बात याद आ-आकर उसके हृदय को व्यथित करने लगी। उसने कातर-स्वर से कहा—

जाने दो!

लवण ने मुसकराकर कहा—

सब गया, प्रिये! मैं अपने जीवन के इस अवसान काल में प्रकृति में कितनी ही प्रतिक्रिया पा रहा हूँ। फलस्वरूप अपने इस जीवन में, ब्रह्म की कल्पना में एवं हमारे मधुर संकल्पों में भी प्रतिक्रियाएँ उपस्थित हुई हैं, जिन्हें आज प्रत्यक्ष देखकर आश्चर्य हो रहा है। सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात का है कि हम अपने सुख में, मोह में, संकल्पों की दीप्ति में, दुनिया के

सुहावने रूप में, इसे नहीं सोचते थे। किन्तु अब ?

लवण बातें करता-करता थोड़ा आगे बढ़ गया था। उसकी उँगली पकड़े चला जाता हुआ बड़ा लड़का सहसा रुक पड़ा। लवण भी खड़ा हो गया। पुत्र ने पीछे घूमकर पुकारा—

माँ !

लवण ने भी पीछे फिरकर देखा कि चाण्डाल-कन्या रुककर मिट्टी में लिपटे सोने के एक टुकड़े को देख रही है। उसने पूछा—

क्या है ?

सोना।

उँह !

लवण ने विरक्त होकर कहा। चाण्डाल-कन्या ने झुककर उसे उठा लिया। वह किसी व्यक्ति की मणि-जटित स्वर्ण-मुद्रिका थी। जब वह झुकी तो उसकी गोद का बच्चा जग गया और रोने लगा। वह बच्चे का ध्यान न कर प्रेम से मुद्रिका देख रही थी। लवण कुछ पूछना ही चाहता था कि उसके कंधे पर बैठा बालक बोल उठा—

वह।

क्या ?

बड़े लड़के ने उचककर देखते हुए पूछा। कंधे पर बैठे हुए बालक ने फिर कहा—

पानी।

हाँ, पिताजी, पानी।

यह कहता हुआ बड़ा लड़का उँगली छोड़कर नाच उठा। इतने में चाण्डाल-कन्या भी दौड़ी हुई आई और उसके पीछे दौड़ आईं उसकी दोनों कन्याएँ। लड़कियाँ अपने भाई का हाथ पकड़कर हर्ष से यह कहती हुई नाच उठीं—

पानी ! पानी ! पानी !

मझला लड़का लवण की उँगली पकड़कर खींचता हुआ बोला—

पिताजी, पानी। चलो।

लवण की आँखों में आँसू भर आया। उसने धीरे से कहा—

कुछ नहीं। बालू चमकता है। भ्रम है, भ्रम।

चाण्डाल-कन्या का भी मुख मलिन हो गया। उसका क्षणिक उत्साह तुरन्त जाता रहा। बच्चे भी मुरझा गए। लवण ने स्थिरतापूर्वक कहा—

हाँ, मन की भ्रांत कल्पना और नेत्रों का दोष है।

तुम न जाने क्या-क्या बकने लगते हो ?

चाण्डाल-कन्या ने घबड़ाकर कहा। लवण ने सूखी मुसकान से हँसकर कहा—

प्रिये, मैं जो कहता हूँ उसे क्या तुम समझती हो ?—इसे तो मैं नहीं कह सकता; किन्तु इतना अवश्य कहे देता हूँ कि न जाने परिस्थिति को किस प्रेरणा से मैं आज बोल रहा हूँ। यह प्रेरणा कहाँ से और क्यों आई, क्या इसे कहलाना चाहती हो ?

पिताजी, पिताजी, कौआ।

इतने में उसका बड़ा लड़का आकाश से गिरे कौए को उठाने के लिए दौड़ता हुआ बोला। दूसरे लड़के और लड़कियाँ भी दौड़ पड़ीं। कन्धे पर बैठा छोटा लड़का भी भूमि पर उतरने के लिए उतावला हो गया। लवण ने उसे उतार दिया। बड़ा लड़का हाथ में कौआ लेकर नाचने लगा। सब भाई-बहन उससे लिपटकर उसे छीनने लगे। लवण वहीं बैठ गया। चाण्डाल-कन्या दूसरी ओर देखने लगी। लवण ने कौए को लेकर उसके पर निकाल दिए और कच्चा मांस बच्चों को बाँट दिया। बच्चे उत्साह से खाने लगे। दम्पति चुपचाप उनका उत्साहपूर्वक मांस चचोरना देखने लगे।

चाण्डाल-कन्या वहाँ एक शिला पर बैठी थी। लवण भी उसके समीप आकर बैठ गया और उसका हाथ पकड़कर बोला—

यह संसार मिथ्या है।

चाण्डाल-कन्या लवण के स्पर्श से रोमांचित हो गई। लवण उसके मुख के पास अपना मुख लाकर बोला—

तुमने बाल्यकाल से ही श्मशान में रहकर ज्ञान की बहुत सी बातें सुनी हैं। वे सब तुमने सुनी थीं दूसरों के मुख से। तुमपर कुछ न बीती थी। वे बीती थीं दूसरों पर। उनका अनुभव दूसरों को हुआ था। जिस प्रकार दूसरे के भोजन से अपनी तृप्ति नहीं होती उसी प्रकार दूसरों के ज्ञान से अपनी आत्मा को सन्तोष नहीं होता। उस समय तुम दूसरों की विरक्ति, रुदन, प्रलाप

आदि को देखकर केवल समवेदना के रूप में कुछ कह दिया करती थीं, उन्हें ज्ञान-कथन द्वारा शान्ति तथा सन्तोष दिलाती थीं; किन्तु वह एक प्रकार से तुम्हारे जीवन का व्यापार था। आज अपने मन को स्वयं सन्तोष देना है। सुनी हुई बातों के आधार पर आत्मा को स्वयं शांति-प्रदान कराना है।

चाण्डाल-कन्या लवण की बात ध्यानपूर्वक सुनती हुई नेत्र निमीलितकर सुखानुभव कर रही थी। लवण ने उसके कंठ में हाथ डालते हुए कहा—

तुमने मुझे प्राण-दान दिया, संतान दिया, घर दिया, सुख दिया, सब कुछ दिया, जिन्हें मैं चाहता था। किन्तु तुम्हें मैं कुछ न दे सका।

चाण्डाल-कन्या लवण के कन्धे पर मस्तक रखकर क्षणिक शांति का अनुभव करने लगी। उन दोनों के बीच गोद में सोए हुए छोटे बच्चे का मधुर श्वास-प्रश्वास स्पष्ट सुनाई दे रहा था। लवण ने दुःखित स्वर में कहा—

मैं इस दुर्भिक्ष में हाय, तुम्हें सुखी न कर सका।

चाण्डाल-कन्या सुख और सन्तोष प्रगट करती हुई बोली—

मुझे इससे अधिक और क्या चाहिए?

चाहिए तो बहुत कुछ। मैं जिसे न दे सका, वही चाहिए।

सब जैसे सपना हो गया।

चाण्डाल-कन्या ने आश्चर्य प्रगट करते हुए कहा। उसका सिर लवण के कन्धे से उठ गया और प्रेमपूर्वक काक को

खाते हुए बच्चों की ओर देखकर सस्नेह बोली—

हाँ, उस सपने की दुनिया और इस दुनिया में कितना अन्तर है ?

लवण की भी दृष्टि बच्चों की ओर घूमी और उन्हें खेल-खेलकर कच्चा मांस खाते देखते हुए उसने कहा—

सब कुछ जैसे नाटक है। उस समय की बातें जो आज सपने की बातें प्रतीत हो रही हैं, हम लोगों के जीवनाभिनय के प्रथम अंक का आरम्भिक दृश्य था।

आह, वह कितना सुन्दर दृश्य था ?

चाण्डाल-कन्या यह कहती हुई लवण के सहारे उठँग गई और आँखें बन्द कर लीं।

हाँ, हत्या, रक्तपात, हिंसा से ओतप्रोत जीवन.........

लवण कह ही रहा था कि उसका कनिष्ठ पुत्र रक्त से भींगा हाथ लेकर पिता के समीप आकर बोला—

पानी।

लवण का ध्यान बँट गया और उसने उसका मुख चूमते हुए कहा—

चलो, आगे मिल जायगा।

लवण उठने लगा। बच्चे ने दोनों हाथ दिखाते हुए फिर कहा—

पानी।

लवण फिर बैठ गया और उसके दोनों हाथों में सूखी मिट्टी लगाकर कहा—

मल दो, हाथ साफ हो जायगा।

उसे हाथ मलते देख अन्य बालक भी पृथ्वी पर हाथ रगड़ने लगे। जब उनके हाथ साफ हो गए तो लवण ने चाण्डाल-कन्या से कहा—

चलो, चलें।

कब तक चलते रहेंगे?

जब तक श्वास है।

पश्चात्?

यह शरीर कहीं पड़ जायगा।

और बच्चे?

चाण्डाल-कन्या ने विकल होकर पूछा। लवण ने गम्भीर होकर कहा—

हाँ, बच्चे!

उनका क्या होगा?

इतने में लवण को सामने कुछ दूरी पर अन्धड़ आता दिखाई दिया और उसने विकलता से कहा—

देखो, अन्धड़ आ रहा है।

देखते-देखते आकाश में शब्द होने लगा। बच्चे चिल्ला उठे—"आँधी! आँधी! आँधी!"

# १२

पिताजी, भूख !

यह कहकर लवण का छोटा बालक रोने लगा। वह हाथ-पैर पटकता हुआ छैला गया। दूसरे बच्चे एक सूखे पीपल के वृक्ष नीचे कँकरीली भूमि पर शिथिल एवं चुपचाप पड़े थे। सबके सिरों पर मृत्यु मँडरा रही थी। चाण्डाल-कन्या से बैठा नहीं जाता था। वह लेट गई। उसके स्तन से चिपका हुआ छोटा बच्चा उसे चिचोर रहा था। किसी के मुख से बोली तक न निकलती थी। सभी भूख-प्यास से विकल थे। बच्चे बराबर करवटें बदलते, कभी उठ बैठते और कभी घूमने लगते। फिर उन्हें मूर्छा आ जाती और पृथ्वी पर गिर पड़ते। लवण यह सब हृदय को थामे हुए देख रहा था; किन्तु अपनी विवशता से लाचार था। उसके ऊपर दुःख का इतना गाढ़ा रंग चढ़ा हुआ था कि उसकी आँखों में आँसू तक नहीं आ रहे थे। उसने बच्चों को धैर्य बँधाना चाहा; किन्तु व्यर्थ हुआ। इसपर उसने छोटे बच्चे को गोद में उठा लिया और चाण्डाल-कन्या से कहा—

चलो, आगे चलें।

अब चला नहीं जाता।

चाण्डाल-कन्या ने दुःखित होकर कहा। लवण ने गोद के रोते हुए बच्चे को पुचकारते हुए करुण-स्वर में कहा—

चलो, थोड़ा और चलें।

उँह !

चाण्डाल-कन्या कराह उठी। इसपर लवण ने धैर्यपूर्वक कहा—

प्रिये, जब तक श्वास है तब तक कुछ करना ही होगा।

श्वास निकलने में अब देर............

कहते-कहते चाण्डाल-कन्या की आँखें भर आईं। उसने छोटे बच्चे को लवण की गोद से लेकर छाती से दबा लिया। अनंतर उसका मुख अपने मुख में लगाती हुई शुष्क कपोलों को आँसुओं से तर कर दिया। इसी समय चलने का नाम सुनकर दूसरे बच्चे उठकर बैठ गए थे। लवण ने सांत्वना देते हुए कहा—

किन्तु जब तक साँस नहीं निकलती तब तक निराश न होना चहिए।

अब, आशा कैसी ?

यह कहते हुए चाण्डाल-कन्या के अधर वेदना से कुंचित हो गए, जिससे मुख पर अनेक रेखाएँ खिंच गईं और नेत्र आकाश की ओर उठ गए। इसपर लवण ने कहा—

प्रिये, इस प्रकार अधीर होने से बच्चों की क्या दशा होगी ?

इससे भयंकर और क्या होगी ?

चाण्डाल-कन्या अंचल से आँसू पोंछकर उठती हुई बोली। लवण आगे चल पड़ा और उसके साथ उसका मरणासन्न कुटुम्ब हो लिया। इस समय इन लोगों की यात्रा जैसे मृत्यु के मुख की यात्रा थी। प्रतिक्षण उनका जीवन क्षीण होता जाता था। वे बड़ी कठिनाई से आगे बढ़ रहे थे। मार्ग में एक सूखी नदी मिली। उसकी भूमि फट-फटकर बीच-बीच में भयंकर दरारे पड़े थे। उपकूल के सभी वृक्ष सूख गए थे। नदी के गर्भ में जल के स्थान पर बटुरी हुई सूखी पत्तियाँ वायु वेग से खड़खड़ाती हुई उड़ रही थीं। विदारकों में मृत पशुओं की अस्थियाँ पड़ी थीं, जिनपर झंखाड़ फैला था। प्रतीर पर पानी के चिन्ह दिखाई देते थे। लवण अपने कुटुम्ब के साथ शिथिल होकर वहाँ एक सूखे पीपल के नीचे बैठ गया। बैठते ही छोटा अबोध बच्चा रोता हुआ कह उठा—

माँ, भूख।

क्षुधित बच्चे को रोता देख लवण व्याकुल हो उठा। उसने चाण्डाल-कन्या की ओर करुण-दृष्टि से देखा। इसी समय दूसरे लड़के कुछ मिल जाने की आशा में इधर-उधर घूमने लगे। माँ बच्चे को शान्त करने की चेष्टा कर रही थी; किन्तु वह शान्त न होता था। रोता-रोता वह मूर्छितप्राय होने लगा। लवण ने घबड़ाकर उससे पूछा—

मांस खायगा ?

बच्चे के मुख पर प्रसन्नता छा गई। उसने हाथ फैला दिए। अनंतर लवण ने फिर पूछा—

मेरा माँस खायगा ?

हाँ।

बच्चा सहसा बोल उठा। चाण्डाल-कन्या ने व्याकुल होकर उसके मुख पर हाथ रख दिया। बच्चा स्वीकृति में मस्तक हिलाता हुआ हाथ हटाने के उद्योग में छटपटाने लगा। माँ का हाथ हटते ही वह पुनः हाथ फैलाकर बोल उठा—

दे ! दे !

लवण ने मुसकराकर कहा—

रुको, देता हूँ।

चाण्डाल-कन्या विस्मित दृष्टि से लवण की ओर देखने लगी। बच्चा लवण के अधिक निकट आकर बोला—

बाबू, दे।

कच्चा खायगा या भून दूँ ?

नहीं, भुना हुआ।

अच्छा, बैठ जाओ। मैं लाता हूँ।

लवण ने आनंदमग्न बच्चे को बैठाते हुए कहा। बच्चा मांस मिलने की आशा में बैठ गया। चाण्डाल-कन्या बोली—

क्या करोगे ?

मांस दूँगा ।

लवण ने मुसकराते हुए कहा। इसपर चाण्डाल-कन्या ने चकित होकर पूछा—

कहाँ से ?

अपना ।

चाण्डाल-कन्या चौंक पड़ी और विस्फारित नेत्रों से लवण की ओर देखती हुई तुरन्त बोली—

क्या कहा ?

इसमें चौंकने की कौन-सी बात है ?

अरे, आत्महत्या !

उसने डरकर शीघ्रता से कहा । इसपर लवण गंभीरता-पूर्वक बोला—

तुमने समझा नहीं ।

खूब समझ गई ।

वह काँपती हुई बोली। उसका कण्ठावरोध हो रहा था और मूर्च्छित हो गई। लवण ने उसे सँभालते हुए कहा—

प्रिये, धीरे से बोलो। बच्चे सुन लेंगे ।

चाण्डाल-कन्या बेंत की तरह काँप रही थी। उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए लवण ने प्रेमपूर्वक कहा—

बच्चों का जीवन बचाना है।

अपना देकर ?

क्यों ? वे तो अपने ही रक्त-मांस हैं।

क्या अपने रक्त-मांस अपना ही रक्त-मांस खायेंगे ?

प्रिये, एक दिन तुम्हीं ने कहा था कि संसार में सब एक दूसरे के आहार हैं। अब, मैं अधिक जी कर क्या करूँगा ?

और मैं ?

तुम बच्चों का पालन करना।

क्या तुम नहीं कर सकते ?

मैं क्या बच्चों की माँ बन सकता हूँ ?

लवण ने मुसकराते हुए कहा। चाण्डाल-कन्या को चक्कर आ गया और वह लवण के चरणों पर गिरकर सिसकियाँ लेने लगी। बच्चा घबड़ा गया और माँ का मुख पकड़ने का उद्योग करता हुआ कहने लगा—

माँ, माँ, रो मत। बाबू मांस देंगे।

उसने बच्चे को झिड़क दिया। बच्चा हतबुद्धि-सा खड़ा उसका मुख देखने लगा। अनंतर लवण ने चाण्डाल-कन्या को स्नेह से उठाते हुए कहा—

प्रिये, बच्चा भकुआ गया। यह क्या ? उठो।

बच्चा माँ के अंक में पुनः आ गया और माँ के आँसुओं को उँगली से पोंछता हुआ बोला—

माँ !

लाल !

चाण्डाल-कन्या ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। बच्चा उसके मुख की ओर देखने लगा। इसपर लवण ने कहा—

दुःख में अधीर होना ठीक नहीं। कुछ बुद्धि से काम लेना चाहिए।

चाण्डाल-कन्या बच्चे के मस्तक पर हाथ फेरने लगी। लवण ने फिर कहा—

प्रिये, इस प्रकार भोजन न मिलने से हम सबका एक साथ अंत हो जायगा। हममें से कोई भी जीता न बच सकेगा। वंश डूब जायगा। हम लोग एक दूसरे को छटपटाते हुए भूखों मरते देखेंगे। परिणाम यह होगा कि दस दिन की अपेक्षा दो ही दिनों मे मर जायँगे। आशा की लम्बी डोर बीच मे ही टूट जायगी। इसलिए मेरा भूना मांस बच्चों को खिलाकर इन्हें बचा लेने में कोई दोष नहीं है।

इसे सुनते ही चाण्डाल-कन्या चीत्कार कर उठी। उसके अंक में दबा हुआ बच्चा सहम गया। अनंतर लवण ने फिर कहा—

प्रिये, बच्चों को मेरा भूना मांस खिलाती रहना और चलती जाना। कहीं-न-कहीं हरित भूमि मिल जायगी और तुम लोगों का जीवन बच जायगा।

तुम्हें मार कर ?

वह आँसू निकलते नेत्रों को अंचल से ढँकती हुई बोल उठी। अनंतर लवण ने हँसकर कहा—

मैं मरूँगा कैसे ? शरीर का नाश हो जाने पर भी मैं सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा। इसी को जीवन्मुक्त कहते हैं।

यह कहता हुआ लवण उठकर काष्ठ एकत्र करने लगा। चाण्डाल-कन्या निस्तब्ध बैठी रह गई। उसकी समस्त इंद्रियाँ शिथिल पड़ गईं। कानों में चारों ओर से 'साँय-साँय' की ध्वनि आने लगी। हृदय बैठता जाता था। आँखों के आगे अँधेरा छा गया। लवण की ओर वह देख अवश्य रही थी; किन्तु किस भावना एवं कैसी दृष्टि से देख रही थी, यह उसकी ही समझ में न आ रहा था। वह कभी मूर्छा का अनुभव करती, कभी प्रलाप करने लगती; किन्तु ये बातें भी मानों याद आ-आकर भूल जाती थीं। लवण काष्ठों का ढेर लगाकर लौट आया और पुत्र का मुख चूमकर बोला—

मांस खायगा ?

हाँ।

हमारा ?

हाँ।

क्यों ?

भूख।

अच्छा, हमें भी देगा ?

दूँगा।

माँ को ?

दूँगा।

भाई-बहनों को?

दूँगा।

क्यों?

भूख।

लवण ने उसका मुख फिर चूमा और माँ की गोद में उसे देकर कहा—

प्रिये, मैं अपना मांस भूनता हूँ। तुम बच्चों को खिलाना।

यह कहता हुआ लवण देखते-देखते काष्ठ-समूह के पास पहुँच गया। उसने उसमें आग लगाई और अवयवों को भूनते हुए चिल्लाकर कहा—

प्रिये, मैं अत्यन्त सुखी हूँ। प्रसन्न हूँ। अहा, इस मिथ्या शरीर का कैसा सुन्दर नाश हो रहा है। इस समय मुझे विचित्र आनन्द का बोध हो रहा है। प्रिये, यह शरीर, यह मन, यह आत्मा, यह जगत्, हम—तुम—मैं—

लवण अग्नि-ज्वाला के साथ व्योम में अंतर्हित होने लगा।

# १३

हाय, जला ! जला ! जला !

सिंहासनासीन लवणराज सहसा चिल्ला उठे। राजसभा में उपस्थित व्यक्ति महाराज की मूर्छितावस्था देखकर पहले से ही व्याकुल थे; किन्तु उनकी इस स्थिति ने सबको चौंका दिया और वे स्तब्ध हो गए। महामात्य, महाप्रतीहारी आदि सभी प्रमुख राजकर्मचारी पहले से ही सिंहासन के समीप उपस्थित थे। महामात्य ने कम्पित स्वर में निवेदन किया—

महाराज ! महाराज !

महाराज लवण ने आँखें खोलीं और अपने सम्मुख सबको विकल पाया। अनंतर दोनों हाथों से आँखें मलते हुए महाराज बोले—

मैं कहाँ हूँ ?

भगवन्, आप अपने सिंहासन पर हैं।

महामात्य ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया। पश्चात् लवणराज

ने जब अपने शरीर को देखा तो वह स्वेदमय हो रहा था। उनका मस्तक घूम रहा था। मानसिक व्यथा बढ़ी हुई थी। अनंतर चारों ओर विस्फारित नेत्रों से देखते हुए बोले—

मैं—मैं—चाण्डाल-कन्या—पुत्र—अकाल !

देव, आपको कैसा भ्रम हो गया है ?

भ्रम !

लवणराज थोड़ा स्थिर होते हुए बोले। अनंतर महाप्रतीहारी ने विनम्र होकर निवेदन किया—

देव, आपने मूर्च्छितावस्था में क्या कोई भयानक स्वप्न देखा है ?

मैंने ?

महाराज !

हाँ, मैं अभी विन्ध्यारण्य में था। ओह !

यह कहते हुए महाराज लवण का शरीर पुनः काँप उठा। स्वेद निकल आया। अनंतर मुख पोंछते हुए वे बोले—

अत्यंत भयानक दृश्य था, महाप्रतीहारी !

भगवन् !

प्रलय से भी भयंकर था।

देव !

किन्तु............

महाराज कुछ कहते हुए रुक पड़े और सभासदों के व्याकुल

मुख की ओर देखते हुए मानों कुछ अन्वेषण करने लगे। अनंतर इच्छित वस्तु को न देखकर बोले—

यहाँ कुछ समय पूर्व कौन था?

महाराज, एक इन्द्रजालिक।

हाँ, स्मरण हुआ। फिर?

देव, उसने अपनी पिटारी से मोरपंख के गुच्छे को निकालकर महाराज से निवेदन किया था कि मैंने यह नवीन इन्द्रजाल तैयार किया है। आप इसकी ओर देखिए। जब महाराज उस मोरपंख की ओर देखने लगे तो देखते-देखते मूर्च्छित हो गए। अनन्तर महाराज की मुद्रा में नाना प्रकार के परिवर्तन दिखाई दिए।

ठीक।

महाराज अब स्थिर होने लगे। शीतल एवं सुगन्धित वायु के सेवन से उनका विकृत मन बहुत कुछ स्वस्थ और संयत हो चला। अब, वह गम्भीर राज-मुद्रा में सिंहासन पर बैठे दिखाई देने लगे। राजसभा के सभी उपस्थित व्यक्ति महाराज की मूर्च्छा का कारण जानने के लिए उत्सुक थे। इसपर महामात्य ने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—

भगवन्, अपराध क्षमा हो। पुण्यश्लोक महाराज हरिश्चन्द्र के वंशधर एवं उत्तर पांडव-जनपद के वर्त्तमान अधिपति महाराज को किस प्रकार कष्ट हुआ, इसकी जिज्ञासा समस्त सभासदों को

है। देव, हम लोगों को सबसे बड़ा आश्चर्य तो इस बात का है कि महाराज ने कभी स्वप्न में भी कोई दुरित नहीं किया, फिर यह मानसिक वेदना क्यों सहनी पड़ी? यह प्रगट रहस्य है। अतः इसका उद्घाटन अवश्य होना चाहिए।

महामात्य की इस बात को सुनकर लवणराज क्षण-भर चिंता-युक्त दिखाई दिए। अनन्तर उन्होंने इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

जिस समय इन्द्रजालिक ने आकर यह कहा कि मैं एक नवीन इन्द्रजाल दिखाऊँगा तो मुझे कुतूहल हुआ। अनन्तर जब मैं मयूर-पिच्छिका की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगा तो धीरे-धीरे चेतनाहीन हो चला और क्या देखता हूँ कि एक अश्व-पालक उच्चैश्रवा के समान श्रेष्ठ सुन्दर द्रुतगामी अश्व लेकर मेरे सम्मुख उपस्थित है। उसने मुझसे कहा—"हे राजन्, यह अश्व मूर्तिमान् वायु ही है। मेरे स्वामी की यह इच्छा थी कि यह उत्कृष्ट वस्तु किसी महान् विभवशाली पुरुष के अधिकार में जाय। फलस्वरूप इसे लेकर मैं श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ और आप इसे अंगीकार कर कृतार्थ करें।" अश्व-पालक की बात समाप्त होते ही उसके समर्थन में इन्द्रजालिक ने मुझसे कहा—"प्रभो, आप इस अश्व पर आरूढ़ होकर सूर्यदेव की भाँति पृथ्वी-मंडल पर विचरण करते हुए सबको सफल करें।"

मैं विस्मित हो इन बातों को सुनता हुआ अश्व को अनि-

मेष दृष्टि से देखने लगा। पश्चात् उत्तुंग हिमाद्रि-शिखर सदृश उस अश्व पर मैं अमित जलवाही नमित जलधर के समान आरूढ़ हो गया। मेरे शरीर का बोझ पाते ही वह इस प्रकार उड़ा जैसे महाप्रलय-काल में सागर-तरगें चलती हैं। उस समीरणोपम द्रुतगामी अश्व की सहायता से मैं देखते-देखते मानव-जगत् से इतनी दूर पहुँच गया जितनी दूर कोई विषय-लोलुप परमार्थ-चिंतन से। अस्तु, मेरा वाहन परिश्रान्त होकर एक निबिड़ महारण्य में पहुँचा जो दरिद्र के हृदय के समान शून्य, रमणी के चित्त के सदृश्य जटिल, प्रलय-दग्ध जगत् तुल्य भीषण एवं पशु-पक्षियों से रहित था। उस महारण्य में जल का अभाव था। यदि कहीं जल मिलता था तो लवणमय तथा अपेय मिलता था। वह निर्जन महारण्य आकाश के समान असीम, सागर तुल्य विस्तृत एवं मूर्खों के क्रोध की भाँति विषम था। उस वन से मेरा मन वैसा ही खिन्न हो गया जैसे किसी मनचली योषिता का मन अन्न-वस्त्र-विहीन पति की दरिद्रता से खिन्न हो जाता है। उस मरुभूमि सदृश अटवी में यदि कहीं जल था तो मृगमरीचिकाओं में ही जल का भ्रम होता था। वहाँ मैं क्लान्त एवं परिश्रान्त अवस्था में सूर्यास्त तक बड़े कष्ट में पड़ा रहा। उस समय मुझे वह वन ऐसा कष्टकर प्रतीत हो रहा था जैसे किसी विवेक-सम्पन्न पुरुष का मोह अवसादित होनेपर उसे यह संसार अन्तःसार-शून्य प्रतीत होने लगता है। अनन्तर जिस प्रकार भगवान् भास्कर

दिन-भर नभ-मण्डल में भ्रमणकर अपने श्रान्त अश्व के साथ अस्ताचलगामी होते हैं उसी प्रकार मैं भी अपने परिश्रान्त अश्व पर सवार उस मरुस्थल का अतिक्रमण करता हुआ एक अन्य वन में उपनीत हुआ। उस वन में पथिकों के साथी विहंगमकुल पल्लवबहुल तरुओं पर बैठे कल रव द्वारा उसकी शून्यता को हर रहे थे। यद्यपि यह वन भी पहले महारण्य के समान ही गहन था तथापि उसकी अपेक्षा किंचित् सुखकर था। दुःसह एवं दुःखप्रद मृत्यु की अपेक्षा किंचित् कष्टकर व्याधि अच्छी हुआ करती है। वहाँ पहुँचकर मैं एक जम्बीर-कुंज की छाया में उसी प्रकार शरणार्थी हुआ जिस प्रकार महाप्रलय के समय मार्कण्डेय मुनि वट-वृक्ष के शरणार्थी हुए थे।

मैं अपने श्रान्त अश्व पर बैठा हुआ एक वृक्ष की डाल पकड़कर लटक गया। इतने में अश्व वहाँ से लुप्त हो गया। मैं कल्पतरु कल्प उस वृक्ष के नीचे एक श्रान्त एवं खिन्न पथिक की भाँति उसी प्रकार विश्रामशील हुआ जिस प्रकार अस्ताचल के क्रोड़ में भगवान् सूर्य विश्राम करते हैं। जिस समय मैं विश्राम कर रहा था उस समय दिवाकर अस्त हो चुके थे। सृष्टि श्यामता में विनिमज्जित हो गई थी और सभी जीव-जन्तु विश्राम कर रहे थे। जिस प्रकार रात्रि में कुलाय मध्य विहंगम अपने परों में चंचु संवृतकर निश्चेष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार उस जम्बीर-कुंज में मैं समस्त निशा व्याकुल एवं निश्चेष्ट पड़ा रहा।

वह रात्रि मुझे कल्प के समान प्रतीत हुई। वहाँ मैं मोहाच्छन्न अवस्था में अत्यन्त कष्ट से रात्रि व्यतीत करने लगा। इस प्रकार की विपत्ति तथा क्लेश का सामना मुझे अपने जीवन-पर्यन्त न करना पड़ा था। उस दिन मैं न स्नान-सन्ध्या कर सका और न तो मुझे रात्रि में आहार ही मिला। समस्त निशा को मैंने कंपित कलेवर, निद्राविहीन एवं अधीर होकर व्यतीत किया।

उस अरण्य में वैतालगणों का उत्कट एवं भीषण चीत्कार उस समय समाप्त हुआ जब तारका-राशि म्लान होती हुई मेरे मन के दौर्बल्य के समान तिमिर-रेखा क्षीण हो चली। रात्रि व्यतीत होने पर शीताकुल प्राणियों के दाँत बजने बन्द हो गए। मैंने देखा कि प्राची दिशा अरुणिमा विनिमज्जित हो मुझे विपन्न देखकर मुसकरा रही है। गगन-मण्डल में भगवान् विभाकर का दर्शन पाकर मैं उसी प्रकार आनन्दोत्फुल्ल हो गया जिस प्रकार विवेक-हीन पुरुष ज्ञान-लाभ से एवं कोई दरिद्र कांचन पाकर आनन्दित होता है। तांडव करने के पूर्व कैलाशपति जिस प्रकार अपना परिधान गज-चर्म झाड़ते हैं उसी प्रकार मैं उठकर अपना वस्त्र झाड़ने लगा। अनन्तर मैं उस निर्जन अरण्य में फिर विचरण करने लगा। जिस प्रकार मूर्ख पुरुषों में कमनीय गुणों का संसर्ग नहीं होता उसी तरह उस जीर्ण अरण्य में मुझे प्राणियों का चिह्न कहीं दृष्टिगत न हुआ। उसमें केवल विहंगम निःशंक भाव से नभ में इतस्ततः विचरण कर रहे थे। जो लता-वृक्ष

रात्रि मे नीहार-कण द्वारा आद्र हो गए थे अब सूर्य-रश्मियों को पाकर सूख चले। अनन्तर जब मैं वहाँ भटक रहा था और भटकते-भटकते आकाश के अष्टम भाग में सूर्य गमन कर चुके तो मैंने देखा कि जिस प्रकार समुद्र-मंथन के पश्चात् सुधापात्र लेकर देव-दानवों के सम्मुख मोहनी आई थी उसी प्रकार एक कन्या अन्न-जल लेकर मेरे सम्मुख.........

महाराज लवण के मुख से इन बातों को सुनकर सभा आश्चर्य-निमग्न हो गई। चामरधारिणी युवतियाँ चित्र-लिखित-सी बन गईं। महाराज की बात समाप्त हो जाने पर भी उसकी प्रतिध्वनि गूज-सी रही थी। इन्द्रजालिक बैठा मुसकरा रहा था। किसी को कुछ बोलने का साहस न होता था। इतने में राज-पंडित ने सभा की निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा—

महाराज, समस्त जगत् मन के अन्तर्गत है।

लवणराज की दृष्टि महापंडित की ओर सहसा घूम पड़ी। उन्होंने फिर कहा—

राजन्, इस जगत् को मन क्षण में उत्पन्न तथा क्षण में विलीन कर देता है।

महाराज लवण विस्मयाविष्ट होकर कुछ कहना ही चाहते थे कि इतने में महापंडित ने फिर कहा—

महाराज, समस्त दृश्य जगत् ही स्वप्न सदृश्य है।

और मेरा वह स्वप्न ?

महाराज लवण ने जिज्ञासा-भाव से पूछा। इसपर महा-पण्डित ने गम्भीर होकर कहा—

महाराज, क्षण-भर में स्वप्न की जो घटनाएँ आपकी मूर्च्छितावस्था में घटित हुई हैं, वे ही बाह्य जगत् में—जो एक दूसरा स्वप्न-जगत् ही है, युग-युगान्तरों से होती आती हैं।

और मन से उसका योग ?

राजन्, बाह्य जगत् में होनेवाली बातें क्षणमात्र में मन में प्रतीत होती हैं।

यह किस प्रकार ?

लवण ने आश्चर्यपूर्वक पूछा। इसपर सभा में स्थित इन्द्र-जालिक ने मुसकराते हुए कहा—

यह ठीक है, राजन् !

कैसे ?

महाराज, आपको विश्वास नहीं है ?

लवणराज गंभीर होकर मस्तक झुकाए विचार-मग्न दिखाई दिए। अनन्तर इन्द्रजालिक ने पुनः मुसकराकर कहा—

देव, अभी आपने जो कुछ स्वप्न में देखा है, वह सत्य है।

इन्द्रजालिक, क्या कहते हो ?

महाराज, आप उन्हीं बातों को, उसी अरण्य को, उन्हीं वस्तुओं को अपनी आँखों से देख सकते हैं।

कहाँ ?

इसी पृथ्वीतल पर।

अच्छा!

महाराज, क्या देखना चाहते हैं?

निश्चय।

चलूँ?

अवश्य।

लवणराज सिंहासन से उठ खड़े हुए और महाप्रतीहारी से कहा—

महाप्रतीहारी, मैं वहीं चलूँगा और देखूँगा कि वह कितना सत्य है। इन्द्रजालिक, मार्ग-प्रदर्शन करो।

महाराज, सेवक उपस्थित है।

दुंदुभि बज उठी। बन्दी यश-गान करने लगे। लवणराज इन्द्रजालिक के साथ चल पड़े। उसने चलते हुए कहा—

देव, सब सत्य है। संसार में क्या असत्य है और क्या सत्य है, इसे पहचानना ही जीवन की महत्ता है।

अच्छा! इन्द्रजालिक, देखूँगा। चलो।

लवणराज ने सभा-मण्डप से बाहर होते हुए कहा।

# शब्दार्थ

अ

अंगारधानिका = अँगीठी, बोरसी

अंतिका = चूल्हा

अंतःसारशून्य = भीतर से खोखला

अकांड = प्रचंड

अटवी = जंगल

अतिरेक = वृद्धि

अधित्यका = पहाड़ के ऊपर की जमीन

अधिष्ठित = बैठा

अनर्गल = अनापशनाप

अपांग = आँख का कोना

अबंध्य = फूलने-फलनेवाले वृक्ष

अलिंजर = कमोरा, मटका

अवतंस = भूषण

अवदंश = चिखना, शराब पीने के समय खाने की वस्तु

अवधानतापूर्वक = ध्यानपूर्वक

अवसादित = दुखी

अश्वपालक = साईस

आ

आतापी = चील्ह

आनक = डुग्गी

आर्बंध = बैल नाथने की रस्सी

आलोड़ित = मथा हुआ

आवृत = छिपा हुआ, ढका हुआ

आसव = मदिरा

इ

इहलीला = जीवन

उ

उंछ = सीला बीनना

उंछवृत्ति = खेत में छूटे हुए दानों को बीनकर जीवन-निर्वाह का कर्म

उंछशिल = खेत से बीने हुए अन्न

उच्चैश्रवा = इन्द्र के घोड़े का नाम

उडु = नक्षत्र

उत्तमांग = मस्तक

उत्तरीय = दुपट्टा

उद्धान = चूल्हा

उद्भासित = प्रगट

उद्वेलित = घबड़ाया, चंचल

उन्माथ = फंदा

उपकूल = तट के निकट

उपक्रम = ढंग, तैयारी

उपत्यका=पहाड़ के नीचे की जमीन
उपधान = बड़ी तकिया
उपनीत=पहुँचाया जाना, लाया जाना
उर्मि = लहर
उल्का = आकाश से गिरनेवाले चमकाले पिंड
उल्मुक=जलती हुई लुआठी
उषा = सुबह पौ फटने का समय

ऊ

ऊर्जस्वित = ऊँचा
ऊहापोह = संकल्प-विकल्प की दशा

ओ

ओतप्रोत = भरा हुआ

क

[illegible]=ठठरी, अस्थिपंजर
कंठावरोध=गला भर आना, गले से शब्द न निकलना
कुंठित=बिना धार का, कुंद
कडोल=टोकरी
कंबि = करछुल
कनीनिका = पुतली
कपर्दिका = कौड़ी
कलाप = समूह
कांतार = दुर्गम मार्ग
कारोत्तर = मदिरा का माड़

किंगरी ( सं० किन्नरी ) = छोटी सारंगी जिसे योगी बजाते हैं
किलिंजक = चटाई
कुलाय = घोंसला
कृष्णाजिन = काला मृग
क्षुप = छोटा पौधा
क्षुभित = दुःखित

ख

खनित्र = कुदाल

ग

गंड=गाल
गंधवह = वायु
गुंठित = सकुचित
गथ = जमा, पूँजी
गलंतिका = कठवत
गाथा = कथा
गोधूम = गेहूँ

च

चर्मभेदिका = चमार का चाकू
चषक = प्याला (शराब पीने का)
चीत्कार = चिल्लाहट
चीनांशुक = चीन से आनेवाला रेशमी वस्त्र

ज

जंबीर = जँभीरी नीबू
जघन्य = नीच

शब्दार्थ ]

जीवनोल्लास = जीवन की प्रसन्नता और जल-तरंग
ज्योत्स्ना = प्रकाश

ढ

ढक्का = नगारा

त

तंडुल = चावल
तांडव = शंकर का नाच
तादात्म्य = संबंध
तुरीय = अंतिम अवस्था
तोयद = मेघ

थ

थूनी = कुँएँ के जगत के ऊपर का खंभा।

द

दाय = उत्तराधिकारियों में बँटनेवाली संपत्ति
दारुहस्तक = काठ का करछुल
दुरित = पाप
दूषिका = आँख का मैल, कीचड़

ध

धमनी = शरीर के भीतर की नस, नाड़ी

न

नधी = चमड़े की रस्सी
निमीलित = बंद
नियति = भाग्य
निशीथिनी = रात्रि
निष्कर्ष = नतीजा
निष्प्रभ = दीप्ति-रहित
नीरव = शांत
नीहार = ओस
नृशंसता = निर्दयता
निःश्रेयस = स्वर्गीय

प

पंचनद = पंजाब
पांडव-जनपद = दिल्ली नगर
पटल = समूह
पत्रबहुल = घने पत्तोंवाला
परिधान = वस्त्र
परमाणु = कण का सबसे छोटा भाग
परिश्रांत = थका
परिहासोन्मुख = हँसी [illegible]ने को उद्यत
पर्यालोचन किया = [illegible]
पलाल = पुआल
पादुका = जूता
पानगोष्ठिका = शराब पीनेवालों मण्डली
पिष्टपचन = तवा

सबसे बड़ी बात यह है कि इन देशों ने अपने राष्ट्रीय अर्थतंत्र के प्रमुख क्षेत्रों में विदेशी इजारेदारियों की स्थिति को बुरी तरह कमजोर बना डाला है। संयुक्त अरब गणराज्य, बर्मा तथा माली में सम्पत्ति-स्वामी विदेशियों की हलचलों पर अंकुश लगा दिया गया है। वहां अब विदेशी कम्पनियों तथा फर्मों के साइनबोर्ड या विज्ञापन ज्यादा संख्या में देखने को नहीं मिलते। उनकी सम्पत्ति राज्य के हाथों में आ चुकी है तथा मालिक लोगों को वहां से विदा किया जा चुका है।

संयुक्त अरब गणराज्य में विदेशी कम्पनियों तथा फर्मों के जिनका कभी देश पर दबदबा था, राष्ट्रीयकरण के फलस्वरूप उत्पादन के कुल [illegible] ८० प्रतिशत से ज्यादा अब राज्य के हाथों में आ चुका है। [illegible] बैंकों, बीमा कम्पनियों, विदेश-व्यापार तथा परिवहन का राष्ट्रीय- [illegible] चुका है। राष्ट्रीय आय [illegible] एक-तिहाई अब राजकीय क्षेत्र से आता है। [illegible] संयुक्त अर [illegible]

क्षेत्र में नाना प्रकार की सहकारिताओं की स्थापना [illegible] रहा है।

गैरपूंजीवादी ढर्रे पर विकसित होने वाले देशों [illegible] स्वास्थ्य, डाक्टरी देखभाल आदि क्षेत्रों में [illegible] संस्कृति का स्तर आम तौर पर ऊपर उठता जा [illegible] चिकित्सा-सुविधाएं मेहनतकश जनता को उपलब्ध [illegible] और संयुक्त अरब गणराज्य में मजदूरों तथा कि[illegible] तथा विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हैं। बर्मा [illegible] राष्ट्रीयकरण कर दिया है तथा विभिन्न पाठ्यक्र[illegible] कर [illegible] बर्मा, गिनी तथा माली में निःशुल्क चि[illegible] [illegible] है। इन देशों के अन्दर सामाजिक [illegible] जा रही है।